राजर्षि अमोघवर्ष कृत

# प्रश्नोत्तर रत्नमालिका

## ( नीति पथ )

( संस्कृत टीका, अन्वयार्थ, पद्यानुवाद एवं विवेचन सहित )

टीकाकार

**मुनि प्रणम्यसागर**

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर ( म. प्र. )



| | | |
|---|---|---|
| ❑ **कृति** | : | प्रश्नोत्तर रत्नमालिका |
| ❑ **कृतिकार** | : | राजर्षि अमोघवर्ष |
| ❑ **टीका नाम** | : | **नीति पथ** |
| ❑ **टीकाकार** | : | मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज |
| ❑ **संस्करण** | : | प्रथम, अगस्त, 2010<br>(रक्षाबंधन पर्व) |
| ❑ **आवृत्ति** | : | 1100 |
| ❑ **मूल्य** | : | 20/- |
| ❑ **प्राप्ति स्थान** | : | धर्मोदय साहित्य प्रकाशन<br>सागर (म. प्र.) 094249-51771 |
| ❑ **मुद्रक** | : | विकास आफसेट, भोपाल |

# प्रस्तावना

**कृति :** ग्रन्थ लिखने की अनेक विधाएँ होती हैं, उन्हीं में से एक विधा है प्रश्नोत्तर शैली। ऋषियों, मुनियों ने समय-समय पर जनसामान्य को उसी की भाषा-शैली में समझाने का प्रयास किया है। एक प्रश्न और उसका छोटे से एक शब्द में दिया गया उत्तर सभी को समझ में आ जाता है और स्मरण भी रह जाता है। इसी शैली में यह लघुकाय ग्रन्थ रचा गया है। इसमें मंगलाचरण और अन्तिम प्रशस्ति सहित दो श्लोकों को मिलाकर मात्र 29 श्लोक हैं। जो आर्या छन्द में लिखे गए हैं। यदि इन श्लोकों में निबद्ध प्रश्नों की गिनती की जाय तो सभी प्रश्न 66 हैं। किसी श्लोक में चार प्रश्न तो किसी में तीन प्रश्न हैं। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर साथ ही साथ रखा है, इसी विधा के कारण यह ग्रन्थ सबके लिए प्रिय है। यदि मंगलाचरण को छोड़ दें तो इस ग्रन्थ में ऐसी कोई वस्तु नहीं जो मात्र जैन धर्म के लिए ही हो। जैन-अजैन सभी के लिए उपयोगी प्रश्न इस ग्रन्थ में है। इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है कि धार्मिक सिद्धान्तों का इसमें प्ररूपण नहीं है, अपितु व्यवहारिक जीवन में उपयोगी जिन मानवीय सिद्धान्तों और विचारों की आज आवश्यकता है, वह विचार इसमें बहुतायत से हैं। युवा-युवतियों के नैतिक आचरण के उत्थान के लिए यह ग्रन्थ एक दीपस्तम्भ है। इस कृति में प्रदत्त मौलिक विचारों से प्रत्येक आत्मा अपने को सम्माननीय जीवन जीने का और सुख-शांति से रहने का एक उपाय खोज सकता है।

**कृतिकार :** इस कृति के रचयिता के विषय में इतिहासविदों ने अपनी ऊहापोह प्रस्तुत की है। पर मैं स्पष्ट रूप से इतिहास और साहित्य के परिप्रेक्ष्य में इतना ही स्पष्ट करना चाहता हूँ कि इन अमोघवर्ष राजा



के राज्यकाल में जैनधर्म बहुत उन्नत था। तत्कालील आचार्य जिनसेन और उनके शिष्य आचार्य गुणभद्रजी ने इसी राजा के राज्यकाल में सिद्धान्त और साहित्य की उच्चकोटि की रचना की थी।

आचार्य गुणभद्रजी ने उत्तरपुराण की प्रशस्ति में जिनसेन आचार्य का इन्हें शिष्य बताया है।

यस्य प्रांशुनखांशुजाल-विसरद्धारान्तराविर्भवत्
पादाम्भोजरजः पिशंगमुकुटप्रत्यग्ररत्नद्युतिः।
संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमहोत्यलं
स श्रीमञ्जिनसेनपूज्यभगवत्पादो जगन्मंगलम्॥

अर्थात् जिन श्री जिनसेन के दैदीप्यमान नखों के किरण समूह से फैलती हुई धारा बहती थी और उनके भीतर जो उनके चरण कमल की शोभा को धारण करते थे, उनकी रज से जब राजा अमोघवर्ष के मुकुट के ऊपर लगे हुए रत्नों की कांति पीली पड़ जाती थी, तब वह राजा अमोघवर्ष अपने आपको पवित्र मानता था और अपनी उसी अवस्था का सदा स्मरण किया करता था, ऐसे श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् श्री जिनसेन आचार्य सदा संसार का मंगल करें।

अमोघवर्ष कर्नाटक देश के राजा थे, जहाँ की मातृभाषा कन्नड़ थी। दक्षिण भारत में राज्य करने वाले राष्ट्रकूट वंश के राजाओं में आपका नाम आता है। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बाबू कामताप्रसाद जैन ने राष्ट्रकूट काल में दिगम्बर मुनि और दिगम्बर धर्म का प्रचार चरम सीमा पर था, ऐसा कहा है। उन्होंने लिखा है कि-''राष्ट्रकूट अर्थात् राठौर राजवंश जैनधर्म का महान् आश्रयदाता था। इस वंश के कई राजाओं ने अणुव्रतों और महाव्रतों को धारण किया था, जिसके कारण जैनधर्म की विशेष प्रभावना हुई थी। राष्ट्रकूट राज्य में अनेकानेक दिग्गज विद्वान् दिगम्बर मुनि विहार और धर्म प्रचार करते थे। उनके रचे हुए अनूठे ग्रन्थराज आज उपलब्ध हैं।

श्री जिनसेनाचार्य का हरिवंश पुराण, श्री गुणभद्र आचार्य का उत्तरपुराण, श्रीमहावीराचार्य का गणितसार संग्रह आदि ग्रन्थ राष्ट्रकूट राजाओं के समय की रचनाएँ हैं। इन राजाओं में अमोघवर्ष प्रथम एक प्रसिद्ध राजा था। उसकी प्रशंसा अरब के लेखकों ने की है और उसे संसार के श्रेष्ठ राजाओं में गिना है। वह दिगम्बर जैनाचार्यों का परम भक्त था।''

राजा अमोघवर्ष ने राज्य छोड़ा और वह जिनसेनाचार्य के परम भक्त, शिष्य थे तो इससे यह सुतरां फलित होता है कि राजा अमोघवर्ष ने जिनसेनाचार्य से दीक्षा ली हो।

''गणितसार संग्रह'' के रचयिता महावीराचार्य ने भी अमोघवर्ष राजा की प्रशंसा की है और आशीष दिया है कि उस राजा का शासन बढ़ता रहे।

विध्वस्तैकान्तपक्षस्य स्याद्वादन्यायवादिनः।
देवस्य नृपतुङ्गस्य वर्द्धतां तस्य शासनम्॥ 6॥

अमोघवर्ष प्रथम का राज्याभिषेक शक संवत् 636 (विक्रम सं. 862) में हुआ था। प्राचीन शिलालेख और ताम्रपत्रों से ऐसा निश्चित होता है कि 60 वर्ष राज्य करने के बाद राजा ने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास धारण कर लिया था। अतः राज्य त्याग के बाद इस कृति की रचना हुई है तो इस कृति का रचना काल वि.सं. 932 के निकट आता है।

यह प्रश्नोत्तर रत्नमाला सन्मति ट्रस्ट मुंबई से भी प्रकाशित हुई है। उसमें पं. गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा का लेख ''प्रश्नोत्तर रत्नमाला का कर्ता?'' निबद्ध है जो शोधकर्ताओं को पठनीय है।

अमोघवर्ष से पहले एक उपाधि लगी मिलती है राजर्षि। जिसका अर्थ है राजाओं में ऋषि। इस उपाधि से भी उनके संन्यास जीवन की प्रतिध्वनि निकलती है।

वैसे तो राजा लोग गृहस्थ होकर भी ऋषि सम जीवन व्यतीत करते थे, उनको भी राजर्षि कहा जाता था। जैसे भगवान् आदिनाथ के पुत्र को आचार्य जिनसेन ने राजर्षि कहकर पुकारा है। यथा हि-

तदा भरतराजर्षिरन्ववोचदनुक्रमात् - आ.पु. 38/25

अर्थात् उस समय राजर्षि भरत ने अनुक्रम से वर्णन किया। इसके अतिरिक्त राजा लोग जब ऋषि बन जाते हैं, तब भी उन्हें पूर्व पर्याय की अपेक्षा राजर्षि उपाधि दी जाती थी। यहाँ तक कि जो विद्याधर दीक्षा लेकर ऋद्धि सम्पन्न हो जाते हैं तो उन्हें भी 'णमो विज्जाहराणं' कहकर नमस्कार किया है। किन्तु राजा अमोघवर्ष का संन्यास धारण करना प्राचीन शिलालेखों से सिद्ध है।

अन्वयार्थ, विवेचन और पद्यानुवाद करके इस कृति को सर्वग्राह्य बनाने का प्रयास किया है। सुधी पाठक इस लघुकाय कृति के पठन-पाठन से नीतिज्ञ और नैतिक चारित्र की निष्ठा को प्राप्त हों, इन्हीं पुनीत भावनाओं के साथ परम उपकारी गुरुवर श्री विद्यासागरजी के चरणों में नमोऽस्तु सहित अलम्।

नरसिंहपुर वर्षायोग **टीकाकार**
4 अगस्त, 2010

राजर्षि अमोघवर्ष कृत

# प्रश्नोत्तर रत्नमालिका

**प्रणिपत्य वर्द्धमानं प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां वक्ष्ये।**
**नागनरामरवन्द्यं देवं देवाधिपं वीरम् ॥ 1॥**

**अन्वयार्थ** : (**नागनरामरवन्द्यं**) नागेन्द्र, मनुष्य और देवों से वंदनीय (**देवं**) स्वयं देवस्वरूप (**देवाधिपम्**) देवों के अधिपति (**वीरम्**) वीर (**वर्द्धमानं**) वर्द्धमान भगवान् को (**प्रणिपत्य**) नमस्कार करके (**प्रश्नोत्तर रत्नमालिकां**) प्रश्नोत्तर रत्नमालिका को (**वक्ष्ये**) कहूँगा।

**टीका** : वर्द्धमानं प्रणिपत्य नमस्कारं कृत्वा प्रश्नोत्तररत्न-मालिकां नामधेयां कृतिं वक्ष्ये कथयामि। कथम्भूतं वर्द्धमानम्? नाग-नरामर-वन्द्यम् नागः सर्पः संगमनाम्नो देवः परीक्षार्थमागतः वर्द्धमानबालकस्य। अथवा भवनवासी नागकुमारदेवः। नरः चक्रवर्ती गणधरादिः महापुण्यशाली पुरुषः। अमरः देवगतिवाचकः शब्दः। नागाश्च नराश्च अमराश्च नागनरामरास्तैर्वन्द्यो वन्दनार्हो यस्तम्। पुनश्च कथम्? देवम् देवस्वरूपम्। देवाधिपं देवानां देवगतिप्राप्तानां जीवानां अधिपः स्वामी यस्तम्। वीरम् पञ्चसु नामसु एकतमम्।

---

**देव मनुज पशु नाग सभी से, वंदित दिव्य स्वरूप सदा।**
**पर कृत विधिकृत बाधाओं से डिगे नहीं जो वीर कदा॥**
**देवों के भी देव बने जो, वर्धमान केवलज्ञानी।**
**उन्हें नमन कर प्रश्न बनाकर, उत्तर देता मैं ध्यानी॥1॥**



**विवेचन** : यह कृति राजा अमोघवर्ष की है। राष्ट्रकूट वंश के गुर्जर नरेन्द्र अमोघवर्ष आचार्य जिनसेन के परम भक्त शिष्य थे। आचार्य जिनसेन ने महापुराण की रचना एवं जयधवला टीका की थी। सिद्धान्त और साहित्य के प्रामाणिक आचार्य जिनसेनदेव का भक्त होना भी बड़े सौभाग्य की बात है। आचार्य जिनसेन के ही शिष्य आचार्य गुणभद्रजी हुए हैं, जिन्होंने उत्तरपुराण, आत्मानुशासन आदि ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य गुणभद्रजी ने ही इन अमोघवर्ष राजा की अपने उत्तरपुराण की प्रशस्ति में प्रशंसा करते हुए लिखा है कि - ''राजा अमोघवर्ष स्वामी जिनसेन के चरणों में नमस्कार करके अपने को पवित्र हुआ मानते थे।'' उन्होंने लिखा है कि ''संस्मर्ता स्वममोघवर्षनृपतिः पूतोऽहमद्येत्यलम्'' इस प्रकार यह राजा जिनशासन के महान् आचार्य के भक्त थे।

यह तो इतिहास से सिद्ध होता ही है, किन्तु वे भगवान् महावीर के भी परम भक्त थे। सर्वप्रथम मंगलाचरण में भगवान् वर्धमान को जिन चार विशेषणों से नमस्कार किया है, वह जानने योग्य हैं। **पहला विशेषण** - नागनरामरवन्द्यम् अर्थात् नाग, मनुष्य और देवों से वन्दनीय।

इन्द्र की सभा में चर्चा चल रही थी कि इस समय सबसे अधिक शूरवीर कौन है? तो उत्तर मिला वर्धमान स्वामी। उस समय वह वर्धमान बालक अवस्था में थे, और अपने ही जैसी उम्र के बालकों के साथ खेल रहे थे। एक बगीचे में वर्धमान बालक वृक्ष के ऊपर चढ़े थे। एक संगम नाम का देव विकराल नाग का रूप धारण करके उस वृक्ष से लिपट गया। सभी बालक डर कर भाग गए किन्तु महापुरुष क्या भय से डरते हैं, नहीं। इसीलिए उस नागराज के ऊपर चढ़कर वे वृक्ष से नीचे उतर आये और उसी से खेलने लगे। बालक की इस निर्भीकता को देखकर देव ने अपना असली रूप प्रकटकर वर्धमान की स्तुति की और उनका नाम ''महावीर'' रखा। ऐसे महावीर भगवान् जब बचपन से ही देवों से पूजित हुए थे तो

फिर बाद की क्या बात? **दूसरा विशेषण** है – वह देव थे अर्थात् दिव्य पुरुष थे। उनका व्यक्तित्व अलौकिक था, उनकी सोच, उनका पराक्रम, उनका शरीर, उनके गुण सब कुछ मनुष्यों से विलक्षण थे, इसलिए उन्हें देव कहा जाता है। **तीसरा विशेषण** है – देवों के भी अधिपति अर्थात् स्वामी। उन्हें देव लोग अपना स्वामी मानते थे, इसलिए भी उनका यह विशेषण सार्थक है। और वह वीर थे, यह सर्वविदित है। इसीलिए उनका 'वीर' विशेषण भी है, पाँच नामों में से एक नाम भी है। इस प्रकार यह **चौथा विशेषण** हुआ।

ऐसे प्रभु को नमस्कार करके प्रश्नोत्तर रूप रत्नों की यह माला यहाँ कही जा रही है। रत्नों की माला शरीर को शोभायमान करती है, उसी प्रकार उत्तम गुण आत्मा को शोभायमान करते हैं। इस ग्रन्थ को, इस छोटी -सी कृति को रत्नमाला की उपमा दी है। इसके प्रत्येक श्लोक में ऐसे गुणों का वर्णन है, जिससे मानव का मन अन्धकार से प्रकाश की ओर आएगा। आत्मोन्नति का पथिक यही भावना करता है–''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' अर्थात् मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मन में कितने प्रकार के अन्धकार के पटल छाये हैं, वह इस ग्रन्थ के प्रश्नों से ज्ञात होगा और इस प्रश्न का प्रत्येक उत्तर होगा, एक दिव्य प्रकाश। ''बुद्धि किताबों के पढ़ने से आ जाती है किन्तु विवेक महापुरुषों की वाणी से प्राप्त होता है।'' यदि इस कृति में वर्णित गुणों को अपना लिया जाए तो रत्नों की माला भी फीकी दिखेगी और आत्मा अपने ही ज्ञानालोक में आनन्दित हो जाएगा। रत्नों का प्रकाश जिस तरह चिरस्थायी होता है, ऐसे ही आत्मा के गुणों का प्रकाश होता है। इसी बात को स्वयं ग्रन्थकार ने प्रश्न-उत्तर के माध्यम से कहा है। प्रश्न-उत्तर करने से बुद्धि बढ़ती है और बड़ी रहस्य की बात भी दर्पण के समान सामने दिखती है। किसी ने कहा है कि- ''सीखने का एक बेहतरीन तरीका है – प्रश्न पूछना और फिर धैर्य पूर्वक उसका उत्तर सुनना।''



इसी बात को अगली कारिका में कहते हैं-

**कः खलु नालंक्रियते दृष्टादृष्टार्थ साधनपटीयान्।**
**कण्ठस्थितया विमल प्रश्नोत्तररत्नमालिकया॥ 2॥**

**अन्वयार्थ** : **( कण्ठस्थितया )** कण्ठ में स्थित **( विमल प्रश्नोत्तररत्नमालिकया )** अच्छे प्रश्न-उत्तर की रत्नमाला से **( दृष्टा-दृष्टार्थ साधनपटीयान् )** दृष्ट और अदृष्ट अर्थ को साधने में प्रवीण **( कः )** कौन व्यक्ति **( न खलु अलंक्रियते )** विभूषित नहीं होगा? अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति होगा।

**टीका** : अनया विमल प्रश्नोत्तर-रत्नमालिकया मनोनिर्मल कारणत्वात् विमलानि च ते प्रश्नोत्तराणि तेषां रत्नमालिका रत्नानां माला इव मालिका सा तथोक्ता तया। कथंभूता सा? कण्ठस्थितया यथा मालायाः स्थानं कण्ठः तथैव अस्याः शोभा स्मरणेन जायत इत्यर्थः। दृष्टादृष्टार्थ-साधन-पटीयान् दृष्टार्थः प्रत्यक्षेण दृष्टोऽर्थः यथा गुरुः, मूढता, विवेक इत्यादि तेषां स्वरूपं किम्? अदृष्टार्थः मोक्षः स्वर्गः इत्यादिः। तयोः साधने पटीयान् कुशलः भवति अस्य ग्रन्थस्य पठनादित्यर्थः। सः कः खलु नालङ्क्रियते न शोभ्यते अस्मिन् जगति अर्थात् अवश्यमेव शोभते।

**विवेचन** : इस निर्मल प्रश्नोत्तररत्नमालिका कृति को जो व्यक्ति कण्ठ में धारण करेगा, वह दृष्ट-अदृष्ट सभी पदार्थों को साधने में निपुण होगा। यहाँ कण्ठ में धारण करने से प्रयोजन इस कृति को याद करने से है। याद की हुई विद्या ही काम आती है, किताब या कॉपी में लिखी हुई नहीं। पुरानी कहावत है ''कण्ठस्थ विद्या अण्टस्थ धनम्'' अर्थात् कण्ठगत

---

**यहाँ वहाँ अरु जहाँ तहाँ जो, कुछ भी नयनों से दिखता।**
**नहीं दिखे जो उस फल को भी, मैं इन प्रश्नों में कहता॥**
**प्रश्न सहित उत्तर ये सारे याद जिसे भी हो जाएँ।**
**व्यर्थ सजाना तन गहनों में, मन-विवेक यदि जग जाए॥ 2॥**

विद्या और अण्टी में बंधा धन ही विपत्ति में काम आता है। इसलिए प्रत्येक भव्यात्मा इस कृति को याद रख ले और समय-समय पर चिन्तन-मनन करता रहे। ऐसा करने वाला व्यक्ति कभी भी विपत्ति और संकट में पड़ेगा नहीं और यदि संकट में पड़ भी जाए तो वह उबर आएगा। विद्या ही मनुष्य का सबसे बड़ा अलंकार अर्थात् आभूषण है। जो व्यक्ति इस रत्नमालिका को पढ़ेगा तो उसे दृष्ट अर्थात् दिखाई देने वाले और अदृष्ट अर्थात् दिखाई न देने वाले, ऐसे सभी पदार्थों को साधने में निपुण हो जाएगा। दिखाई देने वाले पदार्थ हैं- गुरु, आत्मा, दान, संगति, धैर्य आदि और दिखाई नहीं देने वाले पदार्थ हैं- मोक्ष, स्वर्ग, सच्चरित्र, आत्मिक सुख, परलोक का हित आदि।

इन सभी पदार्थों का जब तक सही स्वरूप नहीं मालूम होगा, तब तक उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती है। सही स्वरूप का ज्ञान उसकी परिभाषा से अथवा सटीक लक्षण से होता है। इसलिए इस ग्रन्थ में प्रत्येक गूढ़ प्रश्न का उत्तर एक शब्द में या एक पंक्ति में कह दिया गया है, जिससे किसी को भी उलझन नहीं हो और उसे याद भी हो जाए। इस ग्रन्थ की रोचकता का सबसे बड़ा कारण प्रश्न-उत्तर शैली ही है। जैसे बच्चे आपस में पहेली पूछते हैं, वैसे ही आपस में इन प्रश्नों को पूछा जाय और खेल-खेल में माता-पिता या शिक्षकों द्वारा बच्चों को उसका उत्तर रटा दिया जाय तो यह बहुत बड़ी उपलब्धि आज के बच्चों के लिए होगी। आज यदि इस दुनिया में कोई कठिन कार्य है तो वह है ''बालक-बालिकाओं को संस्कारित ज्ञान देना।'' यहाँ 'पटीयान्' शब्द 'पटीयस्' का पुं. लिंग से एकवचन का रूप है, उसे द्वितीया विभक्ति का बहुवचन समझने का भ्रम नहीं करना क्योंकि यह वाक्य कर्म प्रयोग में है। जिसके अन्दर इस दृष्ट-अदृष्ट सभी पदार्थों को समझने की चतुराई आ गई उसकी आत्मा ज्ञान-वैभव से सदा अलंकृत रहती है।





अब शुरू होते हैं प्रश्नोत्तर-

**भगवन् किमुपादेयं गुरुवचनं हेयमपि च किमकार्यम्।**
**को गुरुरधिगततत्त्वः सत्त्वहिताभ्युद्यतः सततम्॥ 3॥**

**अन्वयार्थ :** ( **भगवन्** ) हे भगवन्! ( **किम्** ) क्या ( **उपादेयम्** ) उपादेय है? ( **गुरुवचनम्** ) गुरु वचन उपादेय हैं ( **च** ) और ( **हेयम् अपि** ) हेय भी ( **किम्** ) क्या है? ( **अकार्यम्** ) नहीं करने योग्य कार्य हेय हैं ( **गुरुः** ) गुरु ( **कः** ) कौन है? ( **अधिगत तत्त्वः** ) जिसने तत्त्वों को समझ लिया है, वह तथा ( **सततम्** ) जो निरंतर ( **सत्त्व हिताभ्युद्यतः** ) सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है।

**टीका :** भगवन्! किम् उपादेयं ग्रहणयोग्यम्? गुरुवचनम्। सद्गुरुणां वचनं सदुपदेशः सदैव ग्राह्य इत्यर्थः। किम् च हेयमपि? त्याज्यमित्यर्थः। अकार्यम् अकरणीयकार्यम्। यथा असत्यवादनं दुराचारः व्यसनानीत्यादि। गुरुः कः? अधिगततत्त्वः येन जीवादितत्त्वानि सम्यग्रूपेण अधिगतानि प्राप्तानि धारणया सः। पुनश्च कथंभूत? सततम् निरन्तरम्। सत्त्वहिताभ्युद्यतः सत्त्वाः भव्यजीवाः तेषां हिताय आत्मोत्थानाय अभ्युद्यतः प्रयत्नशीलो यः सः।

**विवेचन :** इस संसार में भव्यात्मा का सबसे प्रथम प्रश्न यही होना चाहिए कि भगवन्! उपादेय क्या है? उपादेय अर्थात् ग्रहण करने योग्य, धारण करने योग्य, प्रयोजनी, अपने काम की। उत्तर मिला-

---

**हे भगवन् क्या उपादेय है, हेय रहा क्या बतलाओ।**
**गुरु वचनों को ग्रहण करो अरु,पाप कार्य को तज जाओ॥**
**यह भी बतला दो हे भगवन्! गुरु की क्या पहचान यहाँ।**
**सार ज्ञात कर, परहित रत जो, रहता है वह गुरु यहाँ॥ 3॥**

गुरुजनों के वचन। शास्त्र बहुत हैं, ज्ञान का पार नहीं है, ऐसी स्थिति में गुरुवचन की हमारे लिए शास्त्र हैं और वही विपत्ति में काम आने वाला धन है। इसलिए यहाँ कहा है – गुरु वचनों को सुनो। गुरु की वाणी सुनने से मन विशुद्ध होता है, आत्मा पवित्र होती है। पहले जब शास्त्र नहीं लिखे जाते थे, तब गुरु वचन को सुनने के लिए लोग आतुर रहते थे। गुरु वचनों में उनके जीवन का अनुभव शामिल होता है।

एक ग्वाले ने रात भर मुनिराज की सेवा की और सुबह जब मुनिराज चले तो इतना उनके मुख से निकला–'णमो अरिहंताणं' बस इतना वाक्य ग्वाले ने सुना और याद कर लिया। प्राणान्त तक उसने इन वचनों को नहीं छोड़ा। परिणाम यह निकला कि वह गायों को बचाने के लिए एक दिन नदी में कूदा और उस नदी में पड़ी ठूंठ की लकड़ी से उसका पेट छिद गया और वह मर गया। अपने जन्म में वह सेठ सुदर्शन बना और मोक्ष गया।

यह गुरु वचन की ही देन थी कि 'शिवभूति मुनि' अपने गुरु के वचनों को याद करते थे, पर स्मरण शक्ति नहीं होने के कारण वे भूल जाते थे। वे सतत् प्रयास करते हैं, अन्ततः उन्हें 'मारूष, मा तुष' की जगह 'तुष मास भिन्नं' याद रह गया और उसी से आत्मा भिन्न है, शरीर भिन्न है, यह गुरु ने कहा है। इन वचनों को ध्यान करते हुए गुरु से पहले केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। आचार्य विद्यासागरजी से उनके गुरु महाराज ने कहा कि ''संघ को गुरुकुल बनाना'' अपने गुरु वचनों का उन्होंने पालन किया वस्तुतः वचनों को अपनाने से गुरु भक्ति बढ़ती और वही उपादेय है।

**प्रश्न** : हेय क्या है?

**उत्तर** : हेय का मतलब त्यागने योग्य, छोड़ने योग्य, बचने योग्य। उत्तर मिला – अकार्य अर्थात् नहीं करने योग्य कार्य। जैसे – बड़ों के





सामने उद्दण्ड होना, उनके सामने असभ्यता से बोलना, अपने से बड़ों का अपमान करना, शिक्षकों की हँसी उड़ाना, नशा करना, खाते हुए बोलना, कामुक चेष्टाएँ करना, माता-पिता की बात न मानना, अश्लील पिक्चर और फोटो देखना, पारदर्शी और कसे हुए कपड़े पहनना, दूसरों की बुराई करना, चोरी करना, बात-बात पर झूठ बोलकर खुश होना, बड़ों से मजाक करना, फिजूल खर्ज करना, अपने सुख के लिए दूसरों की परवाह न करना, छुप-छुप कर गलत कार्य करना इत्यादि कार्य हेय हैं।

**प्रश्न** : गुरु कौन हैं?

**उत्तर** : जिसने तत्त्व को समझ लिया है, जान लिया है। तत्त्व का अर्थ सारभूत वस्तु। इस संसार में सार क्या है, इसे जिसने समझ लिया वह गुरु है। ऐसा गुरु संसार की असार भूत वस्तु को नहीं चाहेगा और न उसकी प्राप्ति के लिए चेष्टा करेगा। जिसने तत्त्व को अर्थात् सार को ग्रहण कर लिया वह असार के पीछे नहीं दौड़ेगा ख्याति, पूजा, लाभ की कामना असार है। जो इनके पीछे है, वह गुरु कैसे हो सकता है? इसीलिए गुरु को परिभाषित करने के लिए यहाँ दूसरा विशेषण और दिया है कि जो निरन्तर जगत् के जीवों के उद्धार में लगा हो, उनका हित करने में लगा हो। ख्याति-पूजा को चाहने वाला जीवों का सच्चा हित नहीं कर सकता, उल्टा उनसे अपना उल्लू सीधा करता है। भीड़ के पीछे दौड़ने वाला गुरु स्वयं तत्त्व से अनभिज्ञ है और वह दूसरों को भी तत्त्वज्ञान दे नहीं सकता है। ऐसा गुरु राजा वसु की तरह सत्य को भी झूठ कह देता है और अवसर मिलने पर एकान्तमत का पोषण करने में भी नहीं चूकता। ऐसे अवसर वादी व्याख्यान करने वाले गुरु से दूर रहना। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्त्व हैं। इन सात तत्त्वों का जो समीचीन स्वरूप व्यवहार और निश्चय दोनों नयों से जानता है, वह गुरु है।

## त्वरितं किं कर्त्तव्यं विदुषा संसार सन्ततिच्छेदः।
## किं मोक्ष तरोर्बीजं सम्यग्ज्ञानं क्रिया सहितम्॥ 4॥

**अन्वयार्थ** : **( विदुषा )** बुद्धिमान व्यक्ति के द्वारा **( त्वरितं )** शीघ्र **( किम् )** क्या **( कर्त्तव्यम् )** करना चाहिए? **( संसार सन्ततिच्छेदः )** संसार सन्तति का छेद करना चाहिए **( मोक्ष तरोः )** मोक्ष रूपी वृक्ष का **( बीजम् )** बीज **( किम् )** क्या है? **( सम्यग्ज्ञानम् )** वह सम्यग्ज्ञान जो **( क्रिया सहितम् )** क्रिया से सहित है।

**टीका** : विदुषा विद्वत्पुरुषेण त्वरितं शीघ्रं किं कर्तव्यम्? संसार-सन्ततिच्छेदः संसारो जन्ममरणजरादुःखशतरूपः। तस्य सन्ततिः परम्पराः पुनः पुनः प्राप्तिः। तस्याः उच्छेदो विनाशः इत्यर्थः। मोक्षतरोः मोक्षवृक्षस्य बीजं मुख्यहेतुः उपादानकारणं वा किम्? सम्यग्ज्ञानम् सम्यग्दर्शनेन सहितं ज्ञानमित्यर्थः। तत् किं विशिष्टम्? क्रियासहितम् आचरणेन साकम्। तदेव ज्ञानं शोभने यच्चाचरणेन सहितं वर्तते।

**विवेचन** : हे बुद्धिमत आत्मन्! इस संसार में तुम बहुत रह लिए हो। यह संसार चार गतियों वाला है। संसार में इतने दीर्घकाल से रह रहो कि पंच परावर्तन इस जीव ने अनन्त बार किए हैं। इस संसार में रहकर प्रत्येक पुद्गल को हमने भोगा है। एक बार खाया जाय या भोगने में आए वह भोग कहलाता है। जैसे - भोजन, पान आदि और बार-बार भोगने में आए वह उपभोग कहलाता है। जैसे-कपड़े, बिस्तर, वाहन आदि। इन सभी भोग-उपभोगों को प्रत्येक आत्मा में अनन्त बार ग्रहण किया है और

---

**शीघ्र हमें क्या करना है प्रभु, यह कर्तव्य बोध भी दो।**
**भव्य जीव! तुम सुनो ध्यान से इस भव सन्तति को दे दो॥**
**मोक्ष वृक्ष का बीज रहा क्या जिससे यह तक फलता है।**
**क्रिया सहित जो ज्ञान रहा है, वह ही निश्चित फलता है॥ 4॥**





छोड़ा है, इसलिए अब जो तुम्हारे भोगने में आ रहा है, वह तुम्हारी ही जूठन है। कोई भी पदार्थ नया नहीं है, यहाँ सब कुछ परिवर्तित होता रहता है, इसलिए हमें नया लगता है, वस्तुतः नया कुछ नहीं है। फूल खिलता है, अच्छा लगता है, नया लगता है, फिर वही फूल मिट्टी में मिल जाता है, खाद बन जाती है, पुनः कभी फूल बन जाता है, इसी प्रकार जीवन-मरण की सन्तति चल रही है। किसी कवि ने कहा है-

फूल खिलते खाद में फिर खाद में गुल खिल रहे हैं।
जन्म मृत्यु और मृत्यू जन्म में घुल मिल रहे हैं॥

जीवन-मरण के इसी क्रम का नाम संसार है। इस संसार की परम्परा का छेद करना अर्थात् नाश करना ही बुद्धिमत्ता है। हमारा संसार हमारे भीतर है। हमारी काम वासना, लोभ, तृष्णा, अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या आदि अनेक विकारों का नाम ही संसार है।

यह जीव दश प्राणों से जीता है। इन प्राणों से बंधा जीव मोह आदि कर्मों से बंधा है। वही जीव कर्म फल को भोगता है। वही पुनः कर्म बंध करता है। कर्मों से मैला यह आत्मा तब तक पुनः पुनः अन्य-अन्य प्राणों को धारण करता है, जब तक यह देह की मुख्यता वाले सभी विषयों में ममता नहीं छोड़ता है।

आदा कम्मलिमसो धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे ।
ण जहदि जाव ममत्तिं देहपधाणेसु विसएसु॥

(प्र.सार. 162)

मोक्ष रूपी वृक्ष का बीज क्या है? क्रिया सहित सम्यग्ज्ञान। मात्र ज्ञान हुआ आचरण न हुआ तो मोक्ष की प्रक्रिया शुरु नहीं हुई। जीवादि पदार्थों का यथार्थज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाता है। देखो! तत्त्वार्थसूत्र पढ़ लिया, पढ़ा दिया, उस पर व्याख्यान भी कर दिया किन्तु हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पाँच पापों में कुछ कमी नहीं आयी। पाँच

पापों का त्याग करके अणुव्रत ग्रहण नहीं किए तो सम्यग्ज्ञान किस काम का? जब आस्रव तत्त्व और बन्ध तत्त्व में कुछ कमी आए तभी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान और आचरण सम्यक् चरित्र होता है। इसलिए सर्वप्रथम सप्त व्यसन का बुद्धिपूर्वक गुरु की साक्षी में त्याग करो और अष्ट मूलगुणों को ग्रहण करो तभी मोक्ष का बीज वपन हो पाएगा। धीरे-धीरे बारह व्रतों को ग्रहण करने का साहस करो, निर्जरा तत्त्व का लाभ होगा और कर्मों का संवर होगा। चाहे अणुव्रत हों या महाव्रत उनको जीवन भर सावधानी से निरतिचार पालन करना ही क्रिया सहित सम्यग्ज्ञान है। इसी से मोक्षमार्ग का प्रारम्भ होता है।

**किं पथ्यदनं धर्मः कः शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।**
**कः पण्डितो तो विवेकी किं विषमवधीरिता गुरवः॥ 5॥**

**अन्वयार्थ** : ( **पथि** ) मार्ग में ( **अदनम्** ) भोजन ( **किम्** ) क्या है? ( **धर्मः** ) धर्म है। ( **इह** ) इहलोक में ( **शुचिः** ) पवित्र ( **कः** ) कौन है? ( **यस्य** ) जिसका ( **मानसं शुद्धम्** ) मानस शुद्ध है। ( **कः पण्डितः** ) पण्डित कौन है ( **विवेकी** ) विवेकी जीव, ( **किं विषम्** ) जहर क्या है? ( **गुरवः अवधीरिताः** ) गुरुओं का तिरस्कार।

**टीका** : पथि मोक्षमार्गे। अदनं भोजनम्। किम्? धर्मः "सद्दृष्टि-ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।" इति कथितं लक्षणेन धर्मो ग्राह्यः। इह अस्मिन् लोके। कः शुचिः पवित्रः? यस्य मानसं शुद्धम् यस्य पुरुषस्य मानसं पापरहितमित्यर्थः। पण्डितः कः? विवेकी शरीरात्म भेदज्ञानपरः। विषं किम्? अवधीरिताः तिरस्कृताः गुरुवः। गुरुणामवमान इत्यर्थः।

---

**पथ लम्बा है बहुत मोक्ष का, करें कलेबा क्या शुचि है?**
**धर्म कलेबा करते जाओ मन पवित्र जिसका शुचि वह।**
**कौन कहाता पण्डित जग में और रहा क्या जहर यहाँ।**
**परम विवेकी जीव सुपण्डित गुरु अनादर जहर यहाँ॥ 5॥**





**विवेचन** : मोक्षमार्ग में चलना है तो कुछ ऐसा सेवन करना होगा जो मार्ग में थकावट न पैदा करे और आत्मा को शक्ति दे। ऐसी वस्तु है धर्म। शरीर का भोजन अन्नपान है तो आत्मा का भोजन है धर्म। सर्वप्रथम दया धर्म का पालन करना चाहिए। पाप का त्याग कर व्रत आचरण करने का नाम धर्म है। आत्मानुशासन में कहा है -

पापाद् दुःख धर्मान्सुखमिति सर्वजन सुप्रसिद्धम्।
तस्माद् विहाय पापं चरतु सुखार्यी सदा धर्मम् ॥ 8 ॥

अर्थात् पाप से दुःख होता है और धर्म से सुख होता है, यह बात सभी जनों में प्रसिद्ध है। इसलिए पाप को छोड़कर सुख की इच्छा करने वाले को सदा धर्म करना चाहिए। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने 'धम्मो दयाविसुद्धो' यह कहा है अर्थात् धर्म वह है जो दया से विशुद्ध है। आचार्य समन्तभद्रजी ने "सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः" ऐसा रत्नकरण्डक श्रावकाचार में ग्रन्थ प्रारम्भ करते हुए तीसरी कारिका में कहा है। वस्तुतः यही आंशिक पाप की हानि हमारी आत्मा में राग की हानि करती है। इसी राग के अभाव से आत्मा शनैः-शनैः वीतराग बन जाता है। आत्मा का शुद्ध स्वभाव ही धर्म है और उस धर्म की प्राप्ति कराने वाले यह सभी भाव भी धर्म हैं, जिससे पाप की हानि हो, पापों से विरति हो और संवर-निर्जरा तत्त्व में रति हो।

पूर्व जन्म में इसी धर्म का पालन कर कोटिभट्ट श्रीपाल, प्रद्युम्न, धन्यकुमार, पाण्डव, राम आदि अनेक महान् पुरुष हुए और शत्रुओं ने उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ा। पूर्व में किए धर्म ने उनकी रक्षा की इसलिए पाप का त्याग रूप धर्म सदैव धारण करो।

**प्रश्न** : कौन शुद्ध है? अर्थात् पवित्र है?

**उत्तर** : जिसका मन शुद्ध है, वही पवित्र है। जो अपने मन में काम-भोगों का चिन्तन नहीं करता, वह पवित्र है। जिसके मन में भोग

विलासिता की इच्छा नहीं रहती, जो किसी का अहित नहीं सोचता, जो किसी को फँसाना नहीं चाहता, जो किसी को मारने का विचार नहीं करता, जो कभी चोरी का धन ग्रहण नहीं करता, जो किसी के प्रति दुश्मनी नहीं रखता, जिसकी हमेशा भावना रहती है कि -

अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को कभी न ईर्ष्या भाव धरूँ॥

(मेरी भावना, 4)

उसी पुरुष का मन शुद्ध है।

**प्रश्न** : पण्डित कौन है?

**उत्तर** : विवेकी। जिसे अपने परायों का ज्ञान हो, जो हित-अहित जानता है, क्या उचित है और क्या अनुचित है, इसका जिसे ज्ञान हो, वह पण्डित है, वही विवेकी है। पण्डित का मतलब शास्त्र मात्र पढ़ने से नहीं किन्तु पाप-पुण्य के विवेक से है। विवेक का अर्थ होता है, दूध का दूध और पानी का पानी। हंस की चोंच में ऐसी विशेषता होती है कि वह दूध पीते समय दूध को पी लेता है और पानी को अलग कर देता है, इस तरह विवेकी जीव पाप को तजता है और पुण्य को भजता है। अन्यत्र भी कहा है-

आत्मवत् सर्वभूतेषु पर द्रव्येषु लोष्टवत्।
मातृवत् परदारासु यो जानाति स पण्डितः॥

अर्थात् जो सभी जीवों को अपने समान जानता है, जो दूसरे के धन को मिट्टी के ढेले की तरह जानता है और परस्त्री को माँ के समान जानता है, वह पण्डित है।

**प्रश्न** : इस संसार में सबसे बड़ा विष क्या है?

**उत्तर** : जिसके द्वारा गुरुओं का तिरस्कार या अपमान हुआ, मानो वही सबसे बड़ा जहर है। गुरुओं का अपमान करने से पग-पग पर कष्ट





मिलता है। उनकी हँसी उड़ाने से उसी जन्म में कोढ़ हो जाता है अथवा अगले जन्म में निन्दा और अवमानना होती है। जैसे - सीता के जीव की हुई थी। श्रीपाल को भयंकर कोढ़, उनके अनेक साथियों के साथ इसी मुनि निंदा के पाप से हुआ था।

वर्तमान में भी ऐसा देखा है कि एक पत्रकार ने पत्रिका में लेख दिया कि - '' मुनि जो भोजन करते समय गिराते हैं, उसी जूँठन को उनके भक्त खाते हैं।'' इत्यादि अनेक अनर्गल बातें पत्रिका में लिख दीं। बाद में वह गिरफ्तार हुआ, केश चला और वह जेल में ही कैंसर का रोगी हो गया। अंत में जेल में ही मर गया जबकि कोर्ट तक सभी लोग उसको बचाने की पहल कर रहे थे। किया हुआ कर्म छूटता नहीं है, इसलिए जहर तो एक जन्म में ही मरण का दुःख देता है, किन्तु गुरु निन्दा से अनेक भव में कष्ट होता है।

**किं संसारे सारं बहुशोऽपि विचिन्त्यमानमिदमेव।**
**मनुजेषु दृष्ट तत्त्वं स्वपरहितायोद्यतं जन्म॥ 6॥**

**अन्वयार्थ** : ( **संसारे** ) संसार में ( **सारं किम्** ) सार क्या है? ( **बहुशः अपि** ) बहुत बार भी ( **विचिन्त्यमानम्** ) चिन्तन करते हुए ( **इदम् एव** ) यह ही है कि ( **मनुजेषु** ) मनुष्यों में ( **दृष्ट तत्त्वम्** ) तत्त्व को देखना तथा ( **स्व-पर-हिताय** ) स्व-पर हित के लिए ( **उद्यतं जन्म** ) यह जीवन उद्यत रहना।

**टीका** : संसारे सारं किम्? बहुशोऽपि बहुवारेण विचिन्त्यमानं इदं एव यत् मनुजेषु मनुष्य-पर्यायस्य प्राप्तौ दृष्टतत्त्वं येनात्मनः स्वरूपं दृष्टं

**इस अपार संसार सदन में सार रहा क्या भविजन को।**
**सोचा बहुत विचारा मैंने पाया जो सुन लो उस को॥**
**आत्म तत्त्व का चिन्तन करना मनुज गती का सार रहा।**
**निज- पर हित में उद्यत रहता, जन्म उसी का सफल कहा॥6॥**

चिन्तितमित्यर्थः। तथा च किम्? यस्य जन्म स्वपरहितायोद्यतं स्वपरकल्याणे संलग्नमित्यर्थः।

**विवेचन :**

**प्रश्न :** संसार में सार क्या है?

**उत्तर :** बहुत सोच-विचार करने पर यही तथ्य सामने आया है कि मनुष्य भव में तत्त्व को देखना ही सार है। तत्त्वों से तात्पर्य आत्म तत्त्व से है। भेदविज्ञान करके आत्मानुभव करना ही इस संसार में सार है। संसार, शरीर, भोगों से उदासीन होना सम्यग्दर्शन का चिह्न है। फिर शक्ति अनुसार व्रतों का पालन करते हुए रत्नत्रय धर्म की प्राप्ति करना सम्यक् चारित्र है। यह भेद रत्नत्रय है। आत्मध्यान में लीन उसी यति को अभेद रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। इस प्रकार कभी भेद रत्नत्रय, कभी अभेद रत्नत्रय में अभ्यास करने वाला यति ही योगी कहलाता है। वह योगी ही मुख्य रूप से तत्त्वदृष्टा, आत्मानुभवी कहलाता है। पंचमकाल में मनुष्य जन्म का यही उत्कृष्ट फल है। अभेद रत्नत्रय से छूट कर भेद रत्नत्रय में वह यति जब उपदेश आदि के द्वारा दूसरों को रत्नत्रय धर्म का उपदेश देता है तो वही उसका स्व-पर हितकारी उद्यम कहलाता है।

**मदिरेव मोहजनकः कः स्नेहाः के च दस्यवः विषया।**
**का भव वल्ली तृष्णा को वैरी नन्वनुद्योगः॥ 7॥**

**अन्वयार्थ :** ( **मदिरा इव** ) मदिरा के समान ( **मोहजनकः** ) मोह उत्पन्न करने वाला ( **कः** ) कौन है? ( **स्नेहः** ) स्नेह है। ( **के च दस्यवः** ) और लुटेरे कौन हैं? ( **विषयाः** ) विषय हैं। ( **भववल्ली** ) संसार की लता ( **का** ) क्या है? ( **तृष्णा** ) तृष्णा है ( **वैरी कः** ) कौन वैरी है ( **ननु** ) वास्तव में ( **अनुद्योगः** ) पुरुषार्थ नहीं करना ही अपना दुश्मन है।

---

**जो मन को मोहित कर देता, मदिरा सम क्या चोर रहे।**
**राग भाव मन की मदिरा है, इन्द्रिय विषया चोर कहे॥**
**यह संसार लता क्यों बढ़ती है, विषयों की तृष्णा कारण।**
**आलस ही शत्रु है तेरा, करो सदा इसका वारण॥ 7॥**



**टीका :** मदिरा इव मोहजनकः मोहोत्पादकः कः? स्नेहः रागस्य पर्यायः। के च दस्यवः चौराः? विषयाः पञ्चेन्द्रियाणां स्पर्शरसगन्ध-वर्णशब्दरूपाः। भववल्ली संसारस्य लता का? तृष्णा भोगानामभिवाञ्छा। वैरी शत्रुः कः? ननु निश्चयेन। अनुद्योगः प्रमादः आलसो वा।

**विवेचन :** स्त्री, पुत्र, मित्र आदि में स्नेह करना, राग करना ही मोह है। यह मोह ही मदिरा की तरह आत्मा में मोह उत्पन्न करता है। जैसे शराबी विवेक शून्य हो जाता है और यद्वा - तद्वा प्रवृत्ति करता है। माँ, बहिन, पत्नी के अन्तर को भी भूल जाता है, उसी प्रकार स्नेह से मोह उत्पन्न होता है। मोहित हुआ आत्मा अपना-पराये का विवेक खो देता है। पर आत्मा को, दूसरे के शरीर को अपना मानता है और अपने को भी किसी का मानता है। अपने को दूसरे का कर्ता मानना तथा दूसरे का कर्ता अपने को मानना, यही मोह है, यही भ्रम है। यह भ्रम मोह से उत्पन्न होता है और मोह आपसी स्नेह से। इसलिए जब तक यह आत्मा घर, परिवार, सगे सम्बन्धियों से अपना ममत्व नहीं छोड़ता तब तक वह भ्रमित ही है।

**प्रश्न :** सबसे बड़े चोर-लुटेरे कौन हैं?

**उत्तर :** पंचेन्द्रिय के विषय। पाँचों इन्द्रिय के विषय मोह के कारण आत्मा के दर्शन-ज्ञान स्वभाव को लूटते रहते हैं। मन के माध्यम से यह विषय आत्मा को भ्रम में डाले रहते हैं और कभी भी आत्मा को अपने स्वभाव की सुध नहीं होने देते। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य रूप अनंतचतुष्टयात्मक वैभव को यह विषय लूटते रहते हैं। इसलिए कहा है-

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरबस लूटें सुध नहीं॥

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग, ये पाँच लुटेरों के महा सरदार हैं। इनकी आत्मा में बहुत गहरी पैठ है। आत्मा का कोई भी प्रदेश इनसे अछूता नहीं है। इन पाँच महा सरदारों के ही अनेक ग्रुप हैं, जो कि पाँच प्रकार का मिथ्यात्व है, बारह प्रकार की अविरति है, पन्द्रह प्रकार का प्रमाद है, सोलह प्रकार की बड़ी-बड़ी कषायें हैं और पन्द्रह प्रकार का ही योग है। यह सब मिलकर त्रेपन प्रकार के बड़े लुटेरों के समूह हैं और इन्हीं का आतंक आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में अनादिकाल से चल रहा है। आत्मा के अनन्त गुणों के अपार वैभव पर यह हमेशा से कब्जा किए हैं और अपनी कर्म सत्ता को बढ़ा रहे हैं। पंचेन्द्रिय के यह पाँच विषय स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द हैं।

देखो! कभी यह आत्मा अच्छे-अच्छे मुलायम, चिकने स्पर्श को चाहता है, कभी यह आत्मा स्वादिष्ट, चटपटे व्यञ्जनों को खाने के लिए लालायित रहता है, कभी यह आत्मा सुगन्धित द्रव्यों, फूलमाला, पान आदि का सेवन करता है और कभी यह आत्मा अपने और दूसरे के सुन्दर रूपों को देखता है, कभी यह आत्मा नए-नए मधुर संगीत को सुनने की इच्छा करता है। इन्हीं विषयों की चाह में यह अपने आत्म वैभव को भूला है।

संसार इन्हीं विषयों की चाह से बढ़ रहा है, इसलिए कहा है कि-

**प्रश्न** : संसार की लता क्या है?

**उत्तर** : तृष्णा, लालसा, इच्छा, मनोकामना, लोभ, अतृप्ति। यह सभी शब्द एकार्थवाची हैं। पंचेन्द्रिय के विषयों की चाह में जीवन के अन्त तक कभी भी तृप्ति महसूस नहीं होती है। यह तृप्ति ही अगले भव में आत्मा को पुनः विषय सेवन की इच्छा उत्पन्न करती है, जिससे तृष्णा ही बढ़ती है लेकिन कभी भी तृप्ति नहीं मिलती है। जैसे खारे पानी को पीने





से प्यास कभी नहीं मिटती है, बल्कि और-और बढ़ती है, जिससे यह संसार बल्ली बढ़ती रहती है।

सबसे बड़ा दुश्मन है आलस, उद्यम नहीं करना। पुरुषार्थहीन व्यक्ति मोक्षमार्ग में आगे बढ़ नहीं सकता है। सम्यग्दर्शन की पाँच लब्धियाँ पुरुषार्थमूलक हैं। निद्रा और आलस्य के समय सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती है, यह सिद्धान्त है। अपने आत्म परिणामों को परमार्थभूत देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में आदर के साथ लगाना सम्यग्दर्शन है। आचार्य पूज्यपाद देव ने सर्वार्थसिद्धि में लिखा है कि -" ज्ञान भावनालस्य त्यागः स्वाध्यायः।"अर्थात् आलस्य त्याग कर ज्ञान भावना करना स्वाध्याय है।

सम्यग्ज्ञान भी आलस और अनादर के साथ अर्जित नहीं किया जा सकता है। यदि स्वाध्याय में आलस आता है तो उस समय स्वाध्याय बंद कर देना चाहिए। बेमन से स्वाध्याय करना ज्ञानाराधना का दोष है। सम्यक् चारित्र के पालन में तत्पर रहना रत्नत्रय की आराधना है। आलसी व्यक्ति कभी भी व्रतों का पालन नहीं कर सकता है। सामायिक, प्रोषधोपवास आदि व्रतों के दोषों में इसलिए 'अनादर' नाम का एक दोष रखा है। मोक्ष का पथिक गमनागमन, बोलना, खाना-पीना आदि प्रत्येक क्रियाओं में बिना आलस के उद्योग करता है। अप्रमत्त होना, जाग्रत रहना या सावधान रहना, सबसे बड़ा उद्यम है, पुरुषार्थ है। इसके विपरीत सब कुछ अनुद्यम है, पुरुषार्थहीनता है।

**कस्माद्भयमिह मरणादन्धादपि को विशिष्यते रागी।**
**कः शूरो यो ललनालोचनवाणै र्न च व्यथितः॥ 8॥**

---

**लोग यहाँ किससे डरते हैं? सदा मरण से डरते हैं।**
**अन्धों से भी बढ़कर अन्धा, कामीजन को कहते हैं॥**
**बहुत सूरमा हुए युद्ध में कौन शूर कहलाता है?**
**नयन कटारी से जिसका दिन कभी नहीं भिद जाता है॥ 8॥**

**अन्वयार्थ :** ( **इह** ) इस लोक में ( **कस्मात् भयम्** ) भय किससे है? ( **मरणात्** ) मरण से है। ( **अन्धात् अपि** ) अंधे से भी ( **कः** ) कौन ( **विशिष्यते** ) बढ़कर है? ( **रागी** ) रागी जीव। ( **कः शूरः** ) शूर कौन है? ( **यः** ) जो ( **ललना-लोचन-वाणैः** ) स्त्री के नेत्र रूपी वाणों से ( **न च व्यथितः** ) पीड़ित नहीं हुआ।

**टीका :** इह अस्मिन् संसारे। कस्माद् भयम्? मरणात् कोऽपि जीवो मृत्युं न वाञ्छति तस्मात्। अन्धात् अपि कः विशिष्यते? अर्थात् अन्धादपि अन्धः कोऽस्ति? रागी व्यामोहयुक्तो जीवः कामी वा। शूरः कः? यो ललना-लोचन-बाणैः न च व्यथितः कामिनीनां कटाक्षैः पीडितो न भवतीत्यर्थः।

**विवेचन :** इस संसार में सबको मरण से भय रहता है। कोई भी जीव चाहे वह किसी भी योनि में, किसी भी गति में जन्मा हो मरण से डरता है। हाँ! इसका एक अपवाद है - नारकी जीव। नरक में नारकी जीव मरना चाहते हैं, उन नरकों के दुःख से बचना चाहते हैं पर, वहाँ अकाल मरण नहीं होता है। अतः उनका असमय में मरण नहीं होता है। शास्त्रों में एक घटना आती है कि - एक राजा को एक मुनिराज से अपने मरण के विषय में ज्ञात हुआ कि उसकी मृत्यु सात दिन बाद हो जाएगी। उस राजा ने मुनिराज से पूछा - आप यह और बता दें कि मैं मरकर कहाँ जन्म लूँगा। मुनिराज ने कहा - अपने ही घर के विष्ठा गृह में (शौचालय में) कोई अन्य उपाय न समझते हुए राजा ने अपने पुत्र को कहा जैसे ही मैं इस विष्ठा में कीड़ा बनूँ तो मुझे मार देना ताकि मेरी इस पर्याय से शीघ्र मुक्ति हो जाए। राजा का मरण हुआ और मरकर वही कीड़ा बना। राजकुमार ने देखा और मारना चाहा तो वह कीड़ा अपना बचाव करके भीतर घुस जाता, इस प्रकार करते हुए राजकुमार थक गया। तब मुनिराज ने राजकुमार को समझाया - बेटा! इस संसार की यही स्थिति है, कोई





भी मरना नहीं चाहता। जो जहाँ है, वहीं रमने लगता है। इससे सिद्ध होता है कि मरण से सभी को भय लगता है।

Every one knows that he will die but no beleive it.

प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि वह मरेगा लेकिन कोई भी विश्वास नहीं करता है।

अन्धे से भी अधिक अंधा रागी जीव है। अंधे को तो केवल आँखों से दिखाई नहीं देता और वह बाह्य पदार्थों को नहीं देख पाता है किन्तु रागी जीव देखते हुए भी कुछ नहीं देखता है। स्त्री राग में यह जीव कामान्ध कहलाता है। ऐसा जीव अपने घर की, कुल की, समाज की, मान प्रतिष्ठा को नहीं देखता है। स्त्री राग में अंधा हुआ आज का युवक और पुरुष राग में अंधी हुई युवती घर छोड़कर भाग जाते हैं। बाद में फिर उन्हें पछताना पड़े, पर वापस घर आने में लज्जा आती है, इसलिए जैसे-तैसे अपना गुजारा करते हैं। यदि स्त्री को और कोई अधिक धनवान दिख जाता है तो वह अपने प्रेमी को छोड़कर अन्य के साथ चली जाती है और युवक कोई दूसरी रूपवती मिल जाती है तो वह उसे छोड़कर चला जाता है। ऐसी घटनाएँ हर गली, हर मुहल्ले में आए दिन सभी सुनते हैं, देखते हैं, यह इसी कामान्धता का परिणाम है। कितने ही लोग परेशान होकर आत्म हत्या कर लेते हैं अथवा ''ऑनर किलिंग'' का दौर इस समय बहुत चल रहा है, जिसमें लड़की के भाई अपनी बहिन और उसके प्रेमी को मार देते हैं। यह सब मान-प्रतिष्ठा की खातिर होता है, पर विचार करें कि इसमें किसकी मान-प्रतिष्ठा कितनी बनी रहती है? स्त्री से राग करना ही पंचेन्द्रिय विषयों से राग करना है।

जो युद्ध के मैदान में शूर वीरता दिखाये वह सच्चा शूर नहीं किन्तु

उससे भी बढ़कर शूर वह है जो कामिनी स्त्री के कटाक्षों से भिंदता नहीं है। जिसके हृदय में कभी काम भाव उत्पन्न नहीं होता है। जो स्त्री के हाव-भाव, विलास को देखकर भी मन में व्यथित नहीं होता, जिसका मन उनके रूप से मचलता नहीं, ऐसा कोई योगी ही विषयों के बीच रहकर निर्विकार रह पाता है। वही सबसे बड़ा शूरवीर है। सेठ सुदर्शन गृह में रहकर भी अपनी शूरवीरता का परिचय दुनिया को दे गए। आचार्य जिनसेन ने भी राजा की सभा में इसी शूरवीरता का परिचय दिया था। शूरवीरता की उपाधि और अशोक चक्र से सम्मान करने योग्य ऐसे ही लोग होने चाहिए, न कि मात्र युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले।

**पातुं कर्णाञ्जलिभिः किममृतमिव बुध्यते सदुपदेशः।**
**किं गुरुताया मूलं यदेतदप्रार्थनं नाम॥ ९॥**

**अन्वयार्थ :** ( **कर्णाञ्जलिभिः** ) कर्ण रूपी अञ्जलि से ( **पातुम्** ) पीने के लिए ( **अमृतम् इव** ) अमृत के समान ( **किम् बुध्यते** ) क्या जाना जाता है ( **सदुपदेशः** ) सदुपदेश। ( **गुरुतायाः मूलम्** ) बड़प्पन का मूल कारण ( **किम्** ) क्या है? ( **यत् एतत्** ) जो यह ( **अप्रार्थनम् नाम** ) अयाचना है।

**टीका :** कर्णाञ्जलिभिः कर्णानां अञ्जलिः श्रवणमार्गस्तैः। अमृतमिव किं बुध्यते ज्ञायते? सदुपदेशः। उपदेशश्रवणेन अमृतमिव तृप्तिर्भवतीत्यर्थः। गुरुतायाः गम्भीरतायाः ज्येष्ठताया वा मूलं बीजं किम्? यत् एतत् अप्रार्थनं अयाचितवृत्तिः नाम।

---

**दो कानों को बना अंजुलि क्या अमृत सम पीने योग्य?**
**सदुपदेश ही भव्य जनों के तृप्त करे तन, मन का योग॥**
**रव बड़प्पन का कारण क्या जग में सदा-सदा से सुन।**
**नहीं माँगना कभी किसी से कुछ भी बनी रहे यह धुन॥ ९॥**





**विवेचन :** दोनों कानों से पान करने के लिए अमृत के समान तृप्ति कारक यदि कुछ है तो वह है - सदुपदेश। समीचीन उपदेश इतना तृप्तिकारक होता है कि अन्त समय में भूख-प्यास से पीड़ित मन भी शान्त और आनंदित हो जाता है। समाधि के समय सम्बोधन का इसीलिए बड़ा महत्त्व है। सदुपदेश ही भटके मन को सही रास्ते पर लगा देता है। जिसकी मृत्यु निश्चित है, जो असाध्य रोग से पीड़ित है, जो भोजन-पान करने में असमर्थ है, जिसे देखकर मन में व्यथा उत्पन्न हो, ऐसे दुःखी जीव को जो लाभ औषधि-पान, डॉक्टर, वैद्य से नहीं हो सकता है, वह लाभ सदुपदेश से होता है। ऐसे समय में उस रोगी को उसके कानों में, धीमे-धीमे बड़े प्रेम से उसे सहला-सहला कर वैराग्य भावना, समाधि भावना और उपसर्ग को झेलने वाले मुनियों की घटना सुनाकर उनमें वह साहस उत्पन्न किया जा सकता है कि वह जीव अपनी पीड़ा को भूलकर पंच नमस्कार मंत्र में ध्यान लगाकर बहुत शान्ति के साथ अपने प्राण छोड़ सकता है, इसीलिए अमृत से बढ़कर सदुपदेश कहा गया है।

आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त के बाद दीक्षा लेकर पूर्व कोटि वर्ष तक जंगल में, गुफा में, एकान्त स्थान में रहकर मुनिजन अपना समय धर्मध्यान के साथ इसी सदुपदेश का स्मरण करके निकालते हैं। चंचल मन को संभालने का और मार्ग पर स्थिर रखने का एकमात्र उपाय सदुपदेश ही है। इसलिए हमेशा जिनवाणी के वचनामृत का पान करो। दूसरे से सुनकर ही यह अमृतपान होता है, ऐसा नहीं है, स्वयं पढ़कर स्वयं कानों से अपने मन को सुनाएँ। इसीलिए आचार्य गुणभद्रजी ने आत्मानुशासन में कहा है - ''श्रुतस्कन्धे धीमान् रमयतु मनोमर्कटममुम्।'' अर्थात् इस मन रूपी बन्दर को श्रुत अर्थात् जिनशास्त्र रूपी वृक्ष पर हे बुद्धिमान पुरुष! रमण कराओ।

प्रार्थना नहीं करना ही बड़प्पन है। माँगने से गुरुता नहीं रह जाती

है। हमेशा देने वाला बड़ा होता है और लेने वाला छोटा। देखो! तराजू का पलड़ा जिसमें कुछ वस्तु रखी जाती है, वह नीचे जाता है और जिस पलड़े पर कुछ नहीं होता है, वह ऊपर जाता है, इसी प्रकार याचना करने वाले का गौरव चला जाता है, देने वाले का बढ़ जाता है। किसी से आपने धन आदि की प्रार्थना की, उस व्यक्ति ने वह लाकर दे भी दिया तो भी कभी-न-कभी वह आपसे कुछ कह भी सकता है और किसी अन्य से भी आपके बारे में कहकर आपको छोटा बना सकता है। बावीस परीषहों में 'याचना परीषह' इसीलिए रखा है कि आवश्यकता होने पर भी माँग नहीं करने से कर्म की निर्जरा अधिक होती है। याचना करने वाले व्यक्ति से लोग दूर रहने लगते हैं और उसका आदर सम्मान भी नहीं करते हैं। कहा है -

स्वयं दिया सो दूध बराबर, माँग लिया सो पानी।
खींच लिया सो खून बराबर, यह सच कह्यो ज्ञानी॥

**किं गहनं स्त्री चरित्रं कश्चतुरो यो न खण्डितस्तेन।**
**किं दारिद्र्यमसंतोष एव किं लाघवं याञ्चा ॥ 10॥**

**अन्वयार्थ** : ( **किं गहनम्** ) गहन क्या है? ( **स्त्री चरितम्** ) स्त्री का चरित्र ( **कःचतुरः** ) कौन चतुर है ( **यः** ) जो ( **तेन** ) उस स्त्री के चरित्र से ( **न खण्डितः** ) टूटा नहीं ( **का दारिद्रयम्** ) दरिद्रता क्या है? ( **असंतोषः** ) असंतोष है ( **एवं** ) इसी प्रकार ( **किं लाघवम्** ) लघुता क्या है? ( **याञ्चा** ) याचना।

---

**समझ सके जिसको कोई ऐसी गहन वस्तु है क्या?**
**नारी का मन बड़ा गहन है चतुर वही ना ठगा गया॥**
**क्या दरिद्रता की परिभाषा जिसके मन संतोष नहीं।**
**कौन तुच्छ हो जाता जग में जो माँगे कुछ जहाँ कहीं॥ 10॥**





**टीका** : गहनं काठिन्येन ज्ञातुं योग्यं किम्? स्त्रीचरितम्। ''स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।'' इति वचनेन। कः चतुरः? चतुरो विवेकी भाग्यवान् इत्येकार्थः। यो जनस्तेन चरित्रेण तत्स्त्रीवञ्चनाव्यवहारेण न खण्डितः न दुःखितः। दारिद्र्यम् किम्? असन्तोष एव स्त्रीपुसां मिथः सन्तोषाभावः एव दारिद्र्यम्। लाघवं किम्? याञ्चा याचना हि कस्यापि लाघवाय हेतुः।

**विवेचन** : गहन से तात्पर्य दुर्बोध, समझ से परे, अचिन्तनीय, दुर्गम रहस्य से है। स्त्री का चरित्र समझ पाना बड़ा कठिन है। आज कल युवा लोग इस चरित्र से अनभिज्ञ होकर ही धोखा खा बैठते हैं। सभी स्त्रियाँ ऐसी नहीं होती जो धोखा देने वाली होती हैं किन्तु बहुतायत स्त्रियों में पुरुष को वश में करने की कामना होती है। जो युवक शिक्षा काल में ही उनके हाव-भावों से आकर्षित होकर उनके साथ ही जीवन पर्यन्त रहने का संकल्प सहसा कर लेते हैं, वह अक्सर असफल होते हैं। जो केवल चमड़ी के उजाले से बहक जाते हैं, वह जीवन में आने वाले संकट के अंधेरों से पार नहीं हो पाते हैं। जब कोई स्त्री बातचीत करती है, कटाक्ष करती है, हाव-भाव दिखाती है तो भोला युवक समझ लेता है कि वह हमारे लिए ही ऐसा कर रही है, जबकि उसका यह स्वभाव ही है। उसकी भाव-भंगिमाएँ, अदाएँ सबके लिए रहती हैं। वह स्त्री युवक से क्या चाह रही है? क्यों उसको बहला रही है? यह समझ पाना देवों को भी कठिन होता है, फिर सामान्य मनुष्य की क्या बात? प्रेम प्रसंगों को बहुत जल्द विवाह का अंजाम न दें। सावधान होकर उसे परखें। उसके स्वभाव को समझें, हाव-भाव को नहीं। वही सम्बन्ध सफल होते हैं, जिन सम्बन्धों में रूप, धन, शोहरत का स्वार्थ नहीं पलता हो। स्त्री के मन को समझना बहुत कठिन है, यह बात जिसे याद रहेगी, वह भावुकता से बचा रहेगा। आचार्यों के उपदेश में पुरुष को सम्बोधने की प्रधानता रहती है, इसलिए

उन्हें यहाँ स्त्रियों की वृत्ति की गहनता बतायी है। पुरुष में भी यह संभव है, किन्तु उसका छल समझा जा सकता है, स्त्रियों का नहीं इसीलिए स्त्री चरित्र को गहन कहा है।

पुराण शास्त्रों में कुछ ऐसी घटनाएँ हैं, जिन्हें सुनकर आश्चर्य होता है – जैसे यशोधर राजा को उसकी रानी ने धोखा दिया और उसने एक महावत से प्रार्थना की। सुदर्शन सेठ की सुन्दरता पर मुग्ध होकर एक रानी ने ही उन्हें श्मशान से उठवा लिया। भर्तृहरि ने एक अमर फल अपनी स्त्री को दिया, वह फल उस स्त्री से उसके प्रेमी के पास पहुँचा, उस प्रेमी ने किसी वेश्या को दिया और उस वेश्या ने लाकर फिर राजा को दिया तो राजा भर्तृहरि आश्चर्यचकित रह गए।

आज भी ऐसे प्रसंग सुनने में आते हैं कि – एक युवक के साथ युवती की सगाई हो गई। विवाह के दो दिन पहले ही वह स्त्री किसी दूसरे युवक के साथ भाग गई। विवाह के पहले तो कभी विवाह के बाद ऐसे प्रसंग अक्सर घटते रहते हैं।

तो फिर क्या कोई विवाह सम्बन्ध न करे? ऐसी आशंका करने पर मानो स्वयं ही ग्रन्थकार उत्तर दे रहे हैं कि वह पुरुष ही चतुर है, जो उस दुश्चरित्र से खण्डित नहीं हुआ हो। यहाँ चतुराई से तात्पर्य उसके भाग्य से है। वह भाग्यवान है, जिसने कभी स्त्री से धोखा नहीं खाया। जिसका सम्बन्ध सफलता पूर्वक चल रहा हो, ऐसा कोई भी सम्बन्ध हो नहीं सकता, यह बात विवाह करने के बाद लोग समझ पाते हैं।

मैंने एक प्रसंग पढ़ा है – वह यहाँ प्रस्तुत करना चाहूँगा। किसी विवाहित युगल ने अपने सम्बन्धियों को आमंत्रण दिया कि शादी के पूरे 25 साल व्यतीत हो जाने पर भी हम दोनों में कभी अनबन नहीं हुई। पार्टी में आए अतिथियों ने कहा भाई! यह कैसे संभव है कि 25 साल से आप



दोनों में कभी गुस्सा नहीं हुआ। उस पुरुष ने कहा शादी के बाद जब हम लोग घूमने शिमला गये तो वहाँ हम लोग अलग-अलग घोड़े पर बैठकर सैर कर रहे थे। मेरी पत्नी जिस घोड़े पर बैठी थी, वह घोड़ा नटखट था। उसने मेरी पत्नी को गिरा दिया। पत्नी ने घोड़े से कहा – खबरदार! यह पहली बार है। पत्नी उठी घोड़े पर फिर बैठ गयी। मैं पत्नी के इस व्यवहार से पड़ा खुश था। हम दोनों थोड़ी दूर साथ चले। पत्नी को घोड़े ने फिर गिरा दिया। पत्नी ने कहा खबरदार! यह दूसरी बार है। पत्नी फिर उसी घोड़े पर बैठ गयी। थोड़ी दूर चलाकर घोड़े ने फिर पटक दिया। पत्नी ने एक रिवाल्वर से घोड़े को धराशायी कर दिया। मैंने जब उससे कहा कि तुमने क्या कर दिया? तुमने एक बेचारे की जान बेवजह ले ली। मेरे गुस्से को देखकर मेरी पत्नी ने मुझसे कहा खबरदार – यह पहली बार है। भैया! तब से मैं और मेरी पत्नी ने फिर कभी कहा सुनी नहीं हुई।

**प्रश्न** : सबसे बड़ी दरिद्रता क्या है?

**उत्तर** : असंतोष। मन के अंदर संतुष्टि नहीं होना ही आदमी की दरिद्रता है। भिखारी वह नहीं, जो रोटी माँगता फिरता है, सबसे बड़ा भिखारी वह है जो लोभी है। लोभ-लालच आदमी को दौड़ाता है और अंत में नीचे पटक देता है।

एक राजा की सवारी मंदिर जाने के लिए निकली। मंदिर में राजा पहुँच गया। बाहर एक भिखारी आया और राजा का इंतजार करने लगा। सोचा कि राजा बाहर आएगा तो आज उससे कुछ माँगेंगे। राजा से बहुत कुछ मिल जाएगा। भिखारी मंदिर के बाहर बैठा राजा की प्रार्थना सुन रहा था। राजा ने भगवान् से अपनी शोहरत चौगुनी करने की प्रार्थना की, आरती की और बाहर आ गया। राजा ने बाहर बैठे भिखारी को देखकर कहा क्या चाहिए? भिखारी ने कहा एक भिखारी दूसरे भिखारी को क्या

दे सकता है? राजा ने कहा – क्या मतलब? अरे राजन् मैं समझता था कि इस दुनिया में मैं ही सबसे दरिद्र हूँ, पर आज आपकी प्रार्थना सुनकर लगा कि मुझसे भी बड़े दरिद्र इस दुनिया में बहुत से हैं। मेरी दरिद्रता तो एक-दो रुपये में संतुष्ट हो जाती है पर आप तो इस दुनिया के सबसे बड़े दरिद्र हैं, जो इतना विशाल राज्य के एक मात्र राजा होते हुए भी अपनी शोहरत को चार गुना करने की आपने भगवान् से प्रार्थना की। राजा शर्मिन्दा हुआ और उसे एहसास हुआ कि वास्तव में मेरा असंतोष ही मेरी दरिद्रता है।

उस राजा की तरह आज इस गरीब भारत में बहुत से दरिद्र हैं, जिनकी संख्या वास्तव में गरीबों की संख्या से बहुत ज्यादा है।

इसी दृष्टान्त से स्पष्ट है कि लाघव अर्थात् छोटापन क्या है? याञ्चा, प्रार्थना। माँगने से सभी गुणों का नाश हो जाता है। जो गरीब होकर स्वाभिमान से जीता है, ईमान की रोटी खाता है, वह इंसान है, बाकी सब शैतान हैं। इंसान और शैतान की पहचान बाहरी वैभव से नहीं भीतरी लालच से होती है। जिस व्यक्ति में और-और की चाह है, वह भीतर से बहुत छोटा है। इसीलिए आचार्यश्री ने लिखा है –

निर्धनता वरदान है, अधिक धनिकता पाप।
सत्य तथ्य की खोज में निर्गुणता अभिशाप॥

**किं जीवितमनवद्यं किं जाड्यं पाटवेऽप्यनभ्यासः।**
**को जागर्ति विवेकी का निद्रा मूढता जन्तोः॥ 11॥**

---

**निरपवाद जीवन जीना ही जीवन सच्चा जीना है।**
**चतुर हुआ अभ्यास नहीं तो मूरख बनकर जीना है॥**
**जो विवेक से युक्त रहा है, वह ही जग में जगता है।**
**बाकी सब तो सोते रहते, जिनमें बसी मूढ़ता है॥ 11॥**





**अन्वयार्थ :** (**किं जीवितम्**) जीवन क्या है? (**अनवद्यम्**) दूषण रहित होना। (**जाड्यं किम्**) जड़ता क्या है? (**पाटवे अपि अनभ्यासः**) चतुर होने पर भी अभ्यास नहीं करना। (**कः जागर्ति**) कौन जाग्रत है? (**विवेकी**) विवेकी जीव। (**का निद्रा**) निद्रा क्या है? (**जन्तोः**) प्राणी की (**मूढता**) मूढ़ता।

**टीका :** किं जीवितम्? अनवद्यम् अपवादरहित जीवनं पापरहितं वा। किं जाड्यम्? जाड्यं नाम मूर्खता स्यात्। पटावेऽप्यनभ्यासः पाटवे चतुरे सत्यापि अनभ्यासः मुहुर्मुहुरनुप्रेक्षायाः अभावाः इति। कः जागर्ति? विवेकी स्वपरविवेकज्ञानशून्यस्तु जाग्रतोऽपि सुप्त एवेत्यर्थः। का निद्रा? जन्तोः जीवस्य मूढता वरविजयोप्लिप्सया मिथ्यावार्तानुसरणम्।

**विवेचन :** निष्कलंक जीवन ही जीवन है। कलंक के साथ जीना मृत्यु से भी ज्यादा पीड़ादायी होता है। कभी-कभी पूर्व कृत कर्म के उदय से भी निर्दोष होने पर भी दोष लगते हैं। सीता, अञ्जना जैसी सती और सुदर्शन सेठ आदि भव्य पुरुष इस कर्मोदय से नहीं बच पाये। कुछ लोग ऐसी परिस्थिति में आत्म हत्या की बात सोचते हैं। आचार्य कहते हैं कि आत्महत्या करना बहुत बड़ा पाप है। आत्म हत्या करने से दूसरे भव में वही कर्मोदय फिर आता है और आत्म हत्या के पाप से वह कर्म का उदय और तीव्र हो जाता है, जिससे इस जन्म से ज्यादा दूसरे जन्म में कष्ट होता है। जैसे पूर्व में हुए पुरुषों ने धर्म की आराधना करते हुए, भगवान् जिनेन्द्र देव पर श्रद्धा रखते हुए उस कर्म उदय को भोगा है और कर्म का उदय दूर हो जाने पर सुख-शान्ति का अनुभव उसी जन्म में किया है, उसी प्रकार हमें कष्ट में घबराना नहीं चाहिए। किसी ने कहा है – अच्छा करो किन्तु बुरे-से-बुरे के लिए भी तैयार रहो-

Do west but prepare for the worst.

हम अच्छा कृत्य करें, फिर भी हम बुरा फल पाने के लिए अपनी मानसिकता को तैयार रखें। कर्म के उदय से हमें जो भी मिल रहा है, उसे सहर्ष स्वीकारें, चाहे वह हमारे लिए अनुकूल हो या प्रतिकूल। आजकल पढ़े लिखे युवा-युवती भी थोड़ी सी मन की नहीं होने पर या प्रतिकूल परिस्थिति आने पर आत्महत्या जैसे जघन्य अपराध को नादानी में कर बैठते हैं और अपने परिवार को हमेशा के लिए कलंकित कर देते हैं। आत्महत्या के पाप से दूसरे जन्म में कुत्ता, बकरी, सूकर, मुर्गा आदि तिर्यञ्च पर्यायों में रहकर पहले से अधिक पर-वश होकर दुःख भोगने पड़ते हैं। वीतराग भगवान् की भक्ति करने से ऐसे कर्म उदय दूर होते हैं। ऐसा करके देखो निश्चित ही अच्छा फल मिलेगा। जिनेन्द्रदेव की भक्ति के अलावा कर्म काटने का और कोई साधन श्रावक, गृहस्थ के पास नहीं है। बड़े-बड़े तपस्वी, ऋषि, मुनि इस भक्ति का आलम्बन लेते हैं और मोक्षमार्ग की बाधा दूर करके अविरल आगे बढ़ते रहते हैं।

**प्रश्न** : जड़ता, मूर्खता क्या है?

**उत्तर** : चतुर होने पर भी, बुद्धिमान होने पर भी अभ्यास नहीं करना। बहुत से लोग बहुत पूजा करते हैं, स्वाध्याय करते हैं और मुनिजन को आहारदान आदि भी करते हैं, किन्तु उनके सामने कभी विपरीतता आ जाती है, वह दुःखी हो जाते हैं तो सबसे पहले धर्म छोड़ देते हैं। मानो पहले वह धर्म कर रहे थे तो धर्म पर एहसान कर रहे थे, या किसी को दिखाने के लिए ही कर रहे थे। जब धर्म करके भी व्यक्ति मान-सम्मान का भाव धर्म के बदले में चाहता है तो वह इसी तरह टूटता है। इसीलिए यहाँ कहा है कि धर्म के माध्यम से जो हमारा जीवन निर्दोष चल रहा था, वह निर्दोषता धर्म करते रहने पर आगे भी बनी रहेगी। यदि हम अभ्यास नहीं करेंगे तो जड़ता आ जाएगी। जिस तरह विद्यार्थी यदि अभ्यास नहीं करता है तो अच्छी तरह याद विद्या को भी भूल जाता है, उसी तरह सुख





में और दुःख में धर्म का अभ्यास नहीं होने पर वह पर-भव में आत्मा से दूर हो जाता है। जिस तरह हम भोजन करना नहीं भूलते उसी तरह हमें भजन करना भी नहीं भूलना चाहिए। धर्म कभी भी अहित नहीं करता है अतः धर्म को कभी मत छोड़ो।

वही जागृत है, जो विवेकवान् है। जागृति से तात्पर्य यहाँ प्रति समय सजग रहने से है। आँख खोले रहने का नाम सजगता नहीं है। सजग वह है जो काम, क्रोध, मात्सर्य आदि विकारी भावों के उद्वेग में नहीं आता है। किसी से मिलने पर, किसी के साथ बैठने पर जब कोई बातचीत प्रारम्भ होती है, तो ऐसे प्रसंग आ जाते हैं, जब हमारे अहंकार को ठेस पहुँचती है, उस समय हमें क्रोध आता है, किसी से ईर्ष्या होने के कारण हम किसी की प्रशंसा नहीं सुन पाते हैं, किसी के द्वारा कोई व्यंग्य करने पर हम क्रोधित हो जाते हैं, किसी के द्वारा कही हुई अच्छी हितकर बात भी हमें उसके प्रति गलत धारणा होने के कारण बुरी लगती है। इत्यादि अनेक प्रसंग व्यक्ति के जीवन में हर समय आते रहते हैं। इन प्रसंगों पर हम अपनी आत्मा को कलुषित नहीं करें और प्रेमभाव का सहारा लेकर सबको क्षमा करते हुए आगे बढ़ें, तभी हमारा विवेक जागृत कहलाएगा अन्यथा हम जागकर भी सो रहे हैं, इसलिए अविवेकी ही हैं।

सबसे बड़ी निद्रा है - प्राणी की मूढ़ता है। मूढ़ता से तात्पर्य है - दुनिया के अविवेक पूर्ण प्रवाह में बहते रहना। देखा-सीखी करना और बिना विचारे प्रवृत्ति करना। पढ़े-लिखे लोग भी मूढ़ता पूर्ण बातों में आ जाते हैं और मूर्खता पूर्ण व्यवहार करते हैं तो आश्चर्य होता है और उनकी मूर्खता पर दया भी आती है। अनेक प्रकार के अंधविश्वास, अनेक प्रकार के देवी-देवताओं के भय, परम्परागत अंधानुकरण, देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ाना आदि ऐसी मूढ़ताएँ हैं, जिनसे भारत ही नहीं विश्व का कोई भी देश बचा नहीं है।

इसी भारत देश में किसी समय सड़कों पर भविष्य बताने वाले नंदी दिखाई देते थे, जिनके मालिक उनसे भीड़ में खड़े लोगों के बारे में पूछताछ करके नंदी के संकेतों से भविष्यवाणी करते और पैसा कमाते थे। उसके बाद गणेशजी के दूध पीने की अफवाहों ने हर आदमी के मन में एक खलबली पैदा कर दी। कभी-कभी किसी मंदिर में मौसम विशेष में कोई मूर्ति गीली हो जाती है, मंदिर की दीवारें और फर्श गीले हो जाते हैं तो पढ़े लिखे धार्मिक लोग उसे चमत्कार बताकर अपनी और मंदिर की प्रतिष्ठा बढ़ाते हैं। आज-कल मीडिया के माध्यम से यह काम आसान हो जाता है। ऐसी तमाम मूढ़ताएँ समय-समय पर प्रचलन में सुनाई पड़ती हैं और लोग मूर्ख बनते रहते हैं। ऐसा केवल भारत में ही नहीं होता, विश्व के कोने-कोने में अपनी-अपनी तरह के भ्रम फैले हैं। जिन्हें विकसित देश कहते हैं, उन देशों में भी टोने-टोटके लोग करते रहते हैं और मानते भी हैं। अभी हाल में एक फीफा, फुटबाल वर्ल्डकप चल रहा है। उसको लेकर दुनिया भर में एक पॉल नाम के ऑक्टोपस (आठ पैरों वाला जलीय जन्तु) की चर्चा है, जिसने वर्ल्ड कप के मैचों की सही-सही भविष्यवाणी करके सबको चौका दिया। ऐसा माना जाता है कि वह ऑक्टोपस जिस टीम के बॉक्स पर बैठता है, वही जीतती है। इसी को पॉल बाबा कहने लगे। स्पेन के लोग जीत गए तो उसी को भगवान् मान रहे हैं, इधर जर्मनी में हार के कारण इस कदर गुस्सा हैं कि लोग उसे मार देना चाहते हैं। भविष्य में कहीं स्पेन हारा तो वहीं के लोग उसे मार देंगे।

ऐसी अंधी, विवेकहीन अवधारणाएँ विकसित देशों में हैं और लोग अपने-आपको वैज्ञानिक युग का एक शिक्षित, सभ्य पुरुष होने का दम भी भरते हैं। इसीलिए दुनिया के मिथ्या भ्रम को मूढ़ता आचार्यों ने कहा है। इस मूढ़ता से जो ऊपर उठता है, वही समीचीन दृष्टि वाला कहलाता है। वह सम्यग्दृष्टि भीड़ में बहने वाला नहीं होता है, अपितु





अपने विवेक को जागृत रखकर ऐसे भ्रमों से अपने आत्मा को बचाता है। हर किसी को भगवान् मानने का भ्रम, हर किसी पुस्तक को धर्म शास्त्र समझने का भ्रम और हर किसी चमत्कारी या प्रभावक पुरुष को गुरु मानने का भ्रम ही मूढ़ता है। यह मूढ़ता सम्यग्दृष्टि के पास नहीं होती है। रेवती रानी की तरह भीड़ का अनुसरण नहीं करने की उस आत्मा के पास एक दिव्य शक्ति होती है, यही विवेक कहलाता है। वही आत्मा जाग्रत कहलाता है।

**नलिनीदलगतजललव तरलं किं यौवनं धनमथायुः।**
**के शशधरकरनिकरा-नुकारिणः सज्जना एव॥ 12॥**

**अन्वयार्थ : ( नलिनी-दल-गत-जल-लव-तरलम् )** कमल के पत्ते पर छोटी बूँदों के समान क्षणभंगुर **( किम् )** क्या है? **( यौवनम् )** यौवन **( धनम् )** धन **( अथ )** और **( आयुः )** आयु है। **( शश-धर-कर-निकरा-नुकारिणः )** चन्द्रमा की किरणों के समूहों का अनुकरण करने वाले **( के )** कौन हैं? **( सज्जना एव )** सज्जन पुरुष ही हैं।

**टीका :** किं नलिनीदलगतजललवतरलम् कमलिनीपत्रोपरिस्थित जलबिन्दुवत् चञ्चलम्? यौवनम् युवावस्था। यं प्राप्य प्राणी बहुशो मदयति। पुनश्च किम्? धनम् गृहवैभवरूप्यादिकम्। अथ पुनश्च आयुः जीवनम्। शशधर-कर-निकरानुकारिणः चन्द्रमा-किरण-समूहानुकरणशीला इत्यर्थः। ते के सन्ति? सञ्जना एव।

---

**कमल पत्र पर पड़ी बूँद सा क्षण भंगुर क्या चपल रहा।**
**यौवन, धन और आयु जीव की, जल बुद बुद सम चपल अहा॥**
**चन्द्र किरण सम उज्ज्वल निर्मल शांति प्रदाता जग में कौन?**
**जो सज्जन जन उनकी संगति शीतलदायी रहती मौन॥ 12॥**

**विवेचन** : यौवन, धन और मनुष्य की आयु कमल पत्र पर पड़ी बूँदों की तरह क्षणभंगुर हैं। जैसे बुलबुला देखते-देखते ही नष्ट हो जाता है और कमल पत्र पर पड़ी बूँद सूख जाती है, उसी तरह यह यौवन आदि देखते-देखते ही समाप्त हो जाते हैं। यौवन कब बुढ़ापे में बदल जाता है, धन कब अचानक नष्ट हो जाता है, आयु कर्म कब समाप्त हो जाए, यह कहा नहीं जा सकता है। इन तीनों चीजों पर मनुष्य को ऐसा विश्वास नहीं करना चाहिए कि यह हमेशा बनी रहेंगी।

कितने ही लोग ऐसे देखने में आते हैं, जो यौवन में भी बूढ़े दिखने लगते हैं, शरीर में ऐसे रोग हो जाते हैं, जो बुढ़ापे से भी ज्यादा कष्टदायी होते हैं। इसी तरह कितने ही अमीर लोगों को उसी जन्म में भिखारी की स्थिति में देखा जाता है और गरीब व्यक्ति भी अमीर हो जाता है, यह धन इसलिए विनश्वर स्वभाव वाला है। आयु का भरोसा कदापि नहीं दिखता है। कब कोई दुर्घटना घट जाए तो जीवन समाप्त हो जाए। यह सब कुछ सभी को अपने आस-पास हर रोज देखने में आता है फिर भी इनकी नश्वरता का भान नहीं होता है।

चन्द्रमा की चाँदनी के समान सुख-शीतलता देने वाले सज्जन पुरुष ही होते हैं। आदमी को सबसे बड़ा सुख उसके साथ रहने वाले व्यक्ति से होता है। पति-पत्नी, भाई-भाई, पिता-पुत्र, नौकर-मालिक, गुरु-शिष्य, मित्र-मित्र, ये कुछ ऐसे संयोग हैं, जो सबके जीवन में होते हैं। इन सम्बन्धों में से कोई एक व्यक्ति यदि सज्जनता की परिधि से बाहर का व्यवहार करता है तो उसके साथी व्यक्ति को जो कष्ट होता है, वह अकथनीय होता है। चन्द्रमा की चाँदनी तो रात में ही शीतलता देती है किन्तु सज्जन पुरुष दिन-रात दूसरों के मन के ताप को हरण करता रहता है। सज्जन पुरुष का उठना, बैठना, बोल-चाल, सभी व्यवहार दूसरों के लिए सुखदायी होते हैं। चन्द्रमा को जिस तरह लोग कितना ही बुरा कहें,





कलंकित कहें किन्तु वह उस बुरे कहने वाले को भी अपनी चाँदनी से शीतलता पहुँचाता है, उसी प्रकार सज्जन पुरुष का स्वभाव होता है, वह किसी की बुराई नहीं करता है और बुराई करने वाले को भी बुरा नहीं कहता है। वह बुराई करने वाले के प्रति भी अच्छा व्यवहार करता है। सज्जन पुरुष अपनी बुराई करने वाले दुर्जन पुरुष की भी प्रशंसा करता है। इस व्यवहार से वह अपने शत्रु को भी मित्र बना लेता है। सज्जन चन्द्रमा की तरह उदित रहता है, वह किसी से भेद-भाव का व्यवहार नहीं करता है। इसी उदार गुण के कारण सज्जन को चन्द्रमा की उपमा दी गई है।

**को नरकः परवशता किं सौख्यं सर्वसंगविरतिर्या।**
**किं सत्यं भूतहितं किं प्रेयः प्राणिनामसवः ॥ 13 ॥**

**अन्वयार्थ** : ( **कः नरकः** ) नरक क्या है? ( **परवशता** ) पराधीन होना। ( **सौख्यं किम्** ) सुख क्या है? ( **या** ) जो ( **सर्व-संग-विरतिः** ) समस्त परिग्रह से विरति है, वह सुख है। ( **सत्यं किम्** ) सत्य क्या है? ( **भूतहितम्** ) प्राणियों का हित करना। ( **प्रेयः किम्** ) प्रिय वस्तु क्या है? ( **प्राणिनाम् असवः** ) प्राणियों को अपने प्राण।

**टीका** : को नरकः? परवशता पराधीनता विवशता वा। किं सौख्यम्? या सर्वसङ्गविशतिः सकलपरिग्रहेभ्यो मुक्तिरेव सौख्यम्। किं सत्यम्? भूतहितम् भूताः प्राणिगणाः तेषां हितं संसारदुःखात् उद्धरणमित्यर्थः। किं प्रेयः प्रियवस्तु? प्राणिनां असवः प्राणाः स्वकीयप्राणवियोगं कोऽपि नेच्छतीत्यर्थः।

---

**नरक कष्ट सम पीड़ाकारक क्या है सुन लो परवशता।**
**सुख की क्या परिभाषा सुन लो, सर्व परिग्रह मुक्ति कथा॥**
**और रहा क्या सत्य यहाँ पर, सर्व प्राणि का हित करना।**
**प्रिय क्या जग में सब जीवों को अपना जीवन प्राण पना॥ 13 ॥**

**विवेचन** : पराधीन रहना ही नरक है। जब देश पराधीन था, तब जो कष्ट होते थे, वह नारकीय यातनाओं से कम नहीं थे। कई राजाओं की क्रूरता ने प्रजा पर जो कहर बरसायें हैं, वह इतिहास में पढ़ने पर आज भी रोमाञ्चित कर देती है। पराधीनता में विवश व्यक्ति का विकास नहीं हो पाता है। पराधीनता और पराश्रितता में अन्तर है। पराश्रित संसार का प्रत्येक प्राणी है, निराश्रित होकर इस संसार में जीवन किसी का नहीं चल सकता है। कितनी ही बड़ी कम्पनी का मालिक क्यों न हो? वह भी उपभोक्ताओं के आश्रित रहता है और उपभोक्ता भी अच्छी वस्तुओं का आश्रय लेते हैं। किसान को मौसम पर, नौकर को मालिक पर, अफसर को बड़े अफसर पर, दुकानदार को ग्राहक पर, वक्ता को श्रोता पर, पुत्र को पिता पर, पत्नी को पति पर, परिवार को समाज पर, एक-दूसरे के ऊपर आश्रित रहने से ही यह सम्बन्ध टिके हैं। इन सम्बन्धों में परस्पर आश्रितता है। यह पराश्रितता पराधीनता नहीं है। पराधीनता में अमानवीय व्यवहार, अत्याचार, ब्लैक मेलिंग, बलात्कार जैसे कृत्य घटित होते हैं। पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओं में रहकर जीवन गुजारना भी किसी को बंधन जैसा लगता है और कुछ लोग इसमें पराधीनता समझते हैं। जब ऐसे लोग इन मर्यादाओं का उल्लंघन करके कारागर की सजा भुगतते हैं, तब उन्हें समझ में आता है कि उन मर्यादाओं की पराश्रितता यदि समझ कर स्वीकार लेते तो आज यह कारावास की पराधीनता नहीं भुगतनी पड़ती। इन मर्यादा के बंधनों को तोड़ने से जो अपमान व्यक्ति को झेलना पड़ता है, वह उसकी जिन्दगी पर बहुत भारी पड़ता है। धन, स्त्री आदि का सुख भी इस दुःख को मिटा नहीं पाता।

आध्यात्मिक दृष्टि से देखा जाय तो मन की कोई भी इच्छा पराधीन बना देती है। इतना ही नहीं शरीर की एक मात्र आवश्यकता जो भोजन पानी की है, वह भी आत्मज्ञ साधुओं को पराधीन लगती है। साधु





भोजन करते हुए भी अपने आपको पराधीन समझता है। इस पराधीनता को कुछ देर स्वीकार करके वह साधु हमेशा के लिए स्वाधीन होने की साधना करता है।

सर्व संग से रहित होना ही सुख है। क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, हिरण्य, सुवर्ण, दासी, दास, कुप्य, भाण्ड यह दश प्रकार का संग है। संग अर्थात् परिग्रह। जिस किसी भी पर वस्तु का संयोग हमारी आत्मा से है वह सब परिग्रह है। बाह्य परिग्रह तो दश प्रकार का है किन्तु भीतरी परिग्रह हमारे भावों के आश्रित हैं। फिर भी मोटे तौर पर उसे मिथ्यात्व, तीन वेद, हास्य आदि छह दोष और चार कषाय के भेद से चौदह प्रकार का कहा है। पर पदार्थ के प्रति थोड़ा भी राग मन में चिन्ता उत्पन्न करता है। चिन्ता से अनेक विकल्प होते हैं, जिससे मन क्षुब्ध बना रहता है। इसी को मन की अशान्ति कहते हैं। अशान्ति ही दुःख है। इसीलिए कहा है कि - ''सुख समस्त परिग्रह से रहित होने पर आता है।'' दिखाई देने वाले परिग्रह तीन प्रकार के होते हैं- सचित्त, अचित्त और मिश्र। भाई, बहिन, मित्र, स्त्री आदि सचित्त परिग्रह हैं। घोड़ा, बैल, गाय आदि भी सचित्त परिग्रह हैं। सोना, चाँदी, धान्य आदि अचित्त परिग्रह हैं। स्वर्ण आदि जेवर से सहित स्त्री आदि मिश्र परिग्रह है। मन जब बाह्य में इन समस्त परिग्रहों से रहित होगा तब निर्विकल्प होगा। यह निर्विकल्पता इन परिग्रहों का बुद्धि पूर्वक संकल्प के साथ त्याग किए बिना नहीं आती। जितना परिग्रह का त्याग हो जाता है, उतनी चिन्ता छूट जाती है किन्तु जितना पास में रहता है, उसकी चिन्ता बनी रहती है। इसलिए समस्त परिग्रह से रहित मुनि ही निर्विकल्प होते हैं, वही सच्चे सुखी हैं। इसीलिए कहा है- चाह लंगोटी की दुःख साले।

प्राणियों का हित करना ही सबसे बड़ा सत्य है। सत्य आत्म सत्ता का भान होना है। यह भान बिना ज्ञान के नहीं होता है। ज्ञान सद्गुरुओं

के उपदेश और सान्निध्य बिना नहीं आता है। सत्य कहने की नहीं प्राप्त करने की वस्तु है। जो जीव अपना आत्महित करने में लगा है, वह सत्य जीवन जी रहा है। जिसके वचनामृत से जीव अपना आत्महित करने लगे वही वचन सत्य है। जिन वचनों के माध्यम जीव पाप से बचकर शुभ क्रियाओं में लगे वही वचन सार्थक हैं। मन, वचन और काय की शुभ प्रवृत्ति से आत्मा शुभ होता है। मन से किसी का बुरा नहीं सोचना, किसी की स्त्री, धन, सम्पत्ति, वाहन आदि की चिन्ता नहीं होना, मन की शुभता है। वचनों में अहंकार नहीं होना, कठोरता नहीं होना और निन्दा के वचन नहीं बोलना वचनों की शुभता है। काय से किसी जीव का वध नहीं करना, कुचेष्टा नहीं करना काय की शुभता है, इसी को शुभ योग कहते हैं। अशुभ योग से बचकर शुभ में प्रवृत्ति होना ही आत्मा के हित के लिए है। यही चारित्र है। यदि यह प्रवृत्ति देव, शास्त्र, गुरु के समीचीन श्रद्धान के साथ होती है तो वह सम्यक् चारित्र कहलाती है। आचार्य नेमिचन्द्रजी द्रव्यसंग्रह में कहते हैं –''असुहादो विणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं'' अशुभ से बचना और शुभ में प्रवृत्ति करना, इसे ही चारित्र जानो। इस चारित्र से ही आत्मा का हित होता है और यह आत्म हित ही सत्य है। जिस उपदेश से आत्मा की अशुभ प्रवृत्ति नहीं छूटे और शुभ में न लगे, वह उपदेश भी असत्य है।

इस जगत् में किसी को यदि सबसे प्रिय वस्तु है तो अपने प्राण हैं। प्रत्येक जीव प्राणों के साथ जीता है। कितना ही छोटा सा छोटा जीव क्यों न हो प्राण से रहित कोई नहीं होता है।

प्रत्येक जीव को अपने कर्मोदय से जितने भी प्राण मिलते हैं, वही उसको प्यारे होते हैं। इसलिए किसी भी प्राणी का वध नहीं करना चाहिए, किसी के भी अंग-उपांग का छेदन नहीं करना चाहिए। किसी का वध हो, किसी को फाँसी की सजा मिले, किसी को मृत्यु दण्ड मिले, किसी का मरण हो, ऐसा दुश्चिन्तन भी करना भाव हिंसा है।





**किं दानमनाकाङक्षं किं मित्रं यन्निवर्तयति पापात्।**
**कोऽलंकारः शीलं, किं वाचां मण्डनं! सत्यम्॥ 14॥**

**अन्वयार्थ** : **( दानं किम् )** दान क्या है? **( अनाकाङ्क्षम् )** आकांक्षा से रहित होकर देना ही दान है। **( मित्रं किम् )** मित्र कौन है? **( यत् पापात् )** जो पाप से **( निवर्तयति )** रोकता है। **( अलंकारः कः )** आभूषण क्या है? **( शीलम् )** शील है। **( वाचां )** वचनों का **( मण्डनं किम् )** आभूषण क्या है? **( सत्यम् )** सत्य है।

**टीका** : दानं किम्? अनाकाक्षम्। ख्यातिसम्मानयशः प्राप्त्यर्थं यद्दीयते तन्न दानमुच्यते तेन अनाकांक्षा नाम दानम्। किं मित्रम्? यत् पापात् हिंसादि पञ्च प्रकारात् निवर्तयति दूरीकरोति तदेव। कः अलङ्कारः आभरणम्? शीलं ब्रह्मचर्यम्। वाचां वचनानां मण्डनं भूषणं किम्? सत्यम् सत्यवादनमित्यर्थः।

**विवेचन** : जिस दान के बदले में कुछ चाह की भावना है, वह दान नहीं सौदा है, व्यापार है। बिना किसी लोभ के, ख्याति-लाभ की भावना के बिना, पद-प्रतिष्ठा-सम्मान की भावना के बिना दान देना ही सच्चा दान है। दान का उद्देश्य लोभ कषाय का त्याग करना है। जिस धन आदि परिग्रह का हमने त्याग किया, उस परिग्रह के प्रति आसक्ति, मूर्च्छा भाव का भी त्याग होता है। यदि उसके प्रति आसक्ति का त्याग नहीं हुआ तो वह दान की कोटि में नहीं आता है। दान करने के बाद दानी को यह प्रसन्नता होती है कि हमें इतने परिग्रह से मुक्ति मिल गयी। इतने परिग्रह

---

**रहा दान क्या जिसमें कुछ भी आकांक्षा ना शेष रहे।**
**मित्र कौन सा सच्चा होता, पाप कार्य से दूर करे॥**
**मानव का आभूषण क्या है, सदा शील गुण मंडित हो।**
**वचनों का आभूषण क्या है, सत्य वाक्य से मंडित हो॥ 14॥**

के प्रति मेरा मूर्च्छा भाव कम हो गया। इसके अलावा अन्य किसी नाम-बड़ाई की चाह नहीं करना चाहिए।

दान चार प्रकार का कहा है- आहार दान, औषध दान, उपकरण दान और आवास दान। यह चार प्रकार का दान परमार्थभूत देव, शास्त्र, गुरु से सम्बन्ध रखने वाला हो। जिनालय का निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा, शास्त्र प्रकाशन और गुरु को आहार आदि देना परमार्थ दान है। वीतराग देव, शास्त्र, गुरु का सद्भाव पञ्चमकाल के अन्त तक बना रहे, इस चिन्ता से श्रावक यथाशक्ति दान क्रिया में संलग्न रहता है। श्रावक के लिए दान और पूजा ही उसका मुख्य धर्म कहा है। आचार्य कुन्दकुन्द ने रयणसार में लिखा है-

**दाणं पूया मुक्खं धम्मो सावयाण, ण सावयो तेण विणा।**

जो दान, पूजा नहीं करता, वह श्रावक नहीं है।

जो पाप से बचाए वही सच्चा मित्र है। धर्म ही आत्मा का सच्चा मित्र है। कहा भी है -''धर्मान्नास्त्यपरं सुहृद् भवभृताम्'' प्रतिक्रमण पाठ। अर्थात् धर्म से बढ़कर कोई दूसरा प्राणियों का मित्र नहीं है। इसी तरह रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं- ''पापमरातिर्धर्मो बन्धुर्जीवस्य चेति निश्चिन्वन्'' अर्थात् जीव का शत्रु पाप है और बन्धु धर्म है।

हे भव्यजीव! इस धर्म को ही अपना बन्धु, अपना मित्र बनाओ। यदि यह मित्र अपने साथ है तो अन्य मित्र अपनी सहायता के लिए आपो आप आ खड़े होते हैं।

देखो! जब रामचन्द्रजी लक्ष्मण भैया के मोह से व्याकुल थे। विक्षिप्तचित्त हो गए थे। तब इन्द्रजीत का पुत्र वज्रमाली और शंबूक के



भाई का पुत्र राम से बदला लेने के लिए अयोध्या की ओर चले। उस समय लव-कुश भी दीक्षा ले चुके थे। सेनापति भी दीक्षा लेकर स्वर्ग चले गए। राज्य में कोई नहीं है, ऐसा जानकर वज्रमाली आदि युद्ध की तैयारी से आए। अपने आप स्वर्ग में देवों का आसन कम्पायमान हुआ। यह देव जटायु पक्षी और कृतांतवक्र के जीव थे। इन्होंने आकर रक्षा की। सो भैया! अपना धर्म साथ में होता है तो देव भी रक्षा करने चले आते हैं। पूर्व जन्म के पुण्य ने ही सेठ सुदर्शन की सूली से रक्षा की। जीवन्धर कुमार श्मशान में देवों से रक्षित हुए। इत्यादि अनेक उदाहरणों से धर्म करने की सीख लो।

सबसे बड़ा आभूषण शील है। सती सीता की कीर्ति इसी शील से है। अञ्जना ने अपनी अपकीर्ति का कलंक इसी शील के आभूषण से हटाया था। आज इस कलिकाल में युवा-युवतियाँ इस आभूषण से सर्वथा रहित हैं। पश्चिम की विकृत संस्कृति ने इस धर्म प्राण भारत देश में भी इस देश की संस्कृति को विकृत बना दिया है। सप्तव्यसनों में परस्त्री सेवन और वेश्यागमन नाम के दो व्यसन हैं, जो आचार्यों ने बहुत पहले कहे हैं, वह आज के समय में बहुत तेजी से फैल रहे हैं। टी. व्ही., मोबाइल के इस बढ़ते दौर में कोई भी आदमी इन व्यसनों का त्यागी नहीं दिखता। परस्त्री सेवन का त्याग आज बहुत दुश्कर हो गया है। बुढ़ापे तक भी आज आदमी निर्लज्ज स्त्रियों की निर्लज्जता को टी. व्ही. में देखकर लजाता नहीं है। आज की स्त्रियों का शील तो अर्द्धवस्त्र पहनना, फैशनेबल कपड़े पहनना और ब्यूटीपार्लर में जाकर अपनी चमड़ी को चमकाना ही रह गया है। चरित्रहीन अभिनेत्रियों और रैम्प पर उतरे मॉडल ही आज की युवतियों के आदर्श हैं। टी. व्ही. चरित्रहीन पेशावर लोगों के विज्ञापन की अंधाधुंध बहार से कामुक मन काम-वासना से रहित कैसे रह सकता है? यह असभ्यता ही अब सभ्यता और संस्कृति का रूप ले रही है। आज की

स्त्री का अलंकार तो अपने शरीरगत माँस और चमड़े को दिखाना ही रह गया है। सीता, मनोरमा, अनन्तमती जैसे आदर्श तो बहुत धुँधले हो गए हैं और उनके नाम लेना भी शर्मनाक लगता है। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित पदों पर पहुँचे व्यक्तियों के कृत्य तो सर्वज्ञ ही देखते-जानते हैं। फिर भी कभी उन्हीं के पाप का घड़ा भर जाने से जब वह कृत्य सामने आते हैं तो सुनने वालों का मुँह शर्म से फीका पड़ जाता है।

जो लोग शील का पालन करते हैं, उनकी समस्त आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। शील सहित व्यक्तियों की रक्षा देव भी आकर करते हैं। इसके विपरीत मन में वासना रखने वाले और व्यभिचार आदि कार्यों में संलग्न रहने वाले पुरुषों स्त्रियों का जीवन कभी भी शान्ति से व्यतीत नहीं होता है। इस जन्म में कुशील करने वालों को पर भव में नरक में जाना पड़ता है, वहाँ लोहे की गर्म-गर्म स्त्री आकृति की पुतलियों से उनका जबरदस्ती अन्य नारकी आलिंगन कराके उन्हें पूर्व भव की स्त्री लम्पटता का ज्ञान कराते हैं। अपनी इच्छानुसार काम-वासना में लगे हुए जीव कामी लोगों को कुत्ते और सूकर की पर्याय में उत्पन्न होकर काम भाव की पूर्ति करनी होती है। जो इस स्त्री पर्याय में उत्पन्न होकर सदाचार और शील का पालन नहीं करती हैं, वह स्त्रियाँ अगले जन्म में वेश्या, कुत्ती और सूकरी बनती हैं। इसलिए हे भव्य प्राणी! पाप भाव से बचो अन्यथा दुर्गति से बचाने वाला कोई नहीं है।

जो स्त्री अपनी सुन्दरता को दिखाकर पुरुष के मन में विकृति पैदा करती हैं, उन्हें पर भव में या तो कुरूप यौवन मिलता है या फिर उन्हें ऐसे कर्मों का बंध होता है कि नहीं चाहते हुए भी उनका सामूहिक बलात्कार किया जाता है और उन्हें मार दिया जाता है। इसलिए जैसे हो सके वैसे इस अब्रह्म के पाप से अपनी रक्षा करो।

जैसे शरीर का आभूषण अच्छे वस्त्र, गहने पहनना नहीं, किन्तु शील का पालन करना है, उसी तरह वचनों का आभूषण यद्वा-तद्वा बोलना, व्यंग्य करना नहीं किन्तु सत्य बोलना है। झूठ बोलना, चापलूसी



करके अपना काम निकालना और धर्म ग्रन्थों का अपनी इच्छानुसार व्याख्यान करना असत्य है। जिसके हृदय में ईमान और सदाचार होता है, उसी के वचन सत्य होते हैं। अधिक बोलना और आत्म प्रशंसा भी असत्य है।

**किं मनर्थ फलं मानसमसंगतं का सुखवहा मैत्री।**
**सर्व व्यसन विनाशे को दक्षः सर्वथा त्यागः ॥ 15 ॥**

**अन्वयार्थ** : ( **अनर्थ फलम् किम्** ) अनर्थ का फल क्या है? ( **असंगतं मानसम्** ) असंगत मानस होना ( **सुखावहा का** ) सुख देने वाली चीज क्या है? ( **मैत्री** ) मैत्री भावना ( **सर्व व्यसन विनाशे** ) समस्त दुःखों के नाश में ( **कः दक्षः** ) कौन समर्थ है? ( **सर्वथा त्यागः** ) सर्व प्रकार से त्याग करना।

**टीका** : अनर्थफलं किम्? मानसं असंगतं मनसः अस्थिरता। का सुखावहा सुखप्रदा? मैत्री सर्वेषु जीवेषु मत्कारणतो दुःखं न भवेदिति भावना। सर्वव्यसनविनाशे सर्वाणां समस्तानां व्यसनानां दुःखानां विनाशे को दक्षः समर्थः? सर्वथा त्यागः मनोवाक्कायेन सङ्गपरित्यागः।

**विवेचन** : अनर्थ अर्थात् अप्रयोजनीय कार्य। अनर्थ करते समय व्यक्ति को अच्छा लगता है किन्तु इसका फल मन की अस्थिरता है। जब व्यक्तिगत अनर्थ कार्य होते हैं तो उसका फल व्यक्ति विशेष को मिलता है और जब सामाजिक या राष्ट्रीय स्तर पर अनर्थ कार्य होते हैं तो उसका

---

**क्या अनर्थ का फल होता है, आकुल व्याकुल मन होना।**
**सुखकारक क्या वस्तु लोक में, मैत्री भाव सदा होना॥**
**सर्व दुःखों को दूर करन में, है समर्थ क्या बतलाओ।**
**सर्व परिग्रह त्याग करो यदि, मन,वच, तन से सुख पाओ॥ 15 ॥**

फल सामूहिक रूप से सभी को भोगना पड़ता है। आज सभी जगह पानी की समस्या, बिजली की समस्या, पर्यावरण की समस्या व्याप्त है। इसका कारण है अनर्थ। प्राकृतिक सम्पदा का अनर्थ करना। अर्थ तब निकलता है, जब किसी वस्तु का सदुपयोग किया जाता है। अर्थ यदि न हो सके और व्यर्थ हो जाए तो इतनी हानि नहीं है, जितनी हानि उस अर्थ का अनर्थ करने में है। अनर्थ का मतलब है दुरूपयोग करना। विश्व की समस्त समस्याएँ इसी अनर्थ का फल हैं। अनर्थ से मन में क्षोभ उत्पन्न होता है। जिससे मन अशिष्ट हो जाता है।

अत्यधिक सुख सुविधाओं के लोभ में धन का तो अनर्थ होता ही है किन्तु समय का भी अनर्थ होता है। पाप कार्यों का उपदेश देना, हिंसा के उपकरण बनाना, उनको उपलब्ध कराना, भण्ड गीत-संगीत सुनना, काम वासना को उत्पन्न करने वाले और व्यर्थ की कल्पनाओं को कराने वाले खोटे उपन्यास, साहित्य का पठन-पाठन, मन में किसी को मारने, लूटने का विचार करते रहना इत्यादि ऐसे अनर्थ कार्य हैं, जिसका फल होता है मानसिक अशान्ति। पूर्वाचार्यों ने एक नाम दिया है 'अनर्थदण्ड'। यह शब्द स्वयं कह रहा है कि अनर्थ के साथ दण्ड भी है। प्रत्येक अनर्थ कार्य का दण्ड मिलता ही है।

हे भव्यात्मन्! मन की शान्ति चाहते हो तो अप्रयोजनीय संग्रह मत करो और धन का सदुपयोग करो।

सभी के प्रति मैत्रीभाव मन को सुख देने वाली भावना है। मैत्री भाव में किसी से राग नहीं, मोह नहीं और द्वेष भी नहीं होता है। मैत्री भाव से तात्पर्य सबके हित की सोचना सबके हित का काम करना। कोई भी संसार का जीव मेरी मन-वचन-काय की चेष्टा से आहत न हो, बस ऐसी





भावना का नाम ही मैत्री है, इस मैत्री भाव की उत्कृष्टता उन्हीं आत्माओं से हो सकती है जिनका मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से समरम्भ, समारम्भ, आरम्भ और चार कषायों के साथ त्याग है, वही संसार के सभी प्राणियों के वास्तविक मैत्री भाव धारण करते हैं। जिनकी किसी भी चर्या से किसी जीव का घात नहीं होता है ऐसे करुणा के धनी साधु सबके हित की भावना रखते हैं। तभी तो कहा है - ''निरख निरख कर पग धरें पालें करुणा अंग... ते गुरु मेरे उर बसो।'' इस मैत्री भावना से ही महान् तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बंध होता है। जिसके फलस्वरूप तीन लोक में अतीव शान्ति और सुख का वातावरण बना रहता है।

सभी प्रकार के दुःखों का नाश करने में कुशल त्याग भावना है। जिस चीज से विकल्प हो, उस चीज का त्याग यदि है तो आत्मा को दुःख नहीं होगा। हमें दुःख उसी वस्तु से होता है, जिसे हमने अपना माना है। यदि मन-वचन-काय से सर्व प्रकार से जगत् के पदार्थों का त्याग है तो जगत् का कोई भी पदार्थ दुःख दे नहीं सकता है। दूसरों की बात तो दूर जब मुनिराज का शरीर ही उन्हें दुःख देने लगता है तो वह उसका भी त्याग कर देते हैं, इसीलिए वही संसार में सुखी आत्मा है। कायोत्सर्ग में इस काय को त्यागने का अभ्यास वह करते रहते हैं और सामायिक में वह संकल्प लेकर बैठते हैं कि-

सर्वं निराकृत्य विकल्प जालं संसार कान्तार निपात हेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्म तत्त्वे ॥ 29 ॥

अर्थात् संसार रूपी जंगल में पटकने वाले सभी विकल्प जालों को छोड़कर हे आत्मन्! एक मात्र अपनी आत्मा को देखता हुआ परमात्म तत्त्व में लीन हो जाओ।

## कोऽन्धो योऽकार्यरतःको बधिरो यः शृणोति न हितानि।
## को मूको यः काले प्रियाणि वक्तुं न जानाति॥ 16॥

**अन्वयार्थ :** (**अन्धः कः**) अन्धा कौन है? (**यः**) जो (**अकार्यरतः**) नहीं योग्य कार्य में लगा है। (**कः बधिरः**) बहरा कौन है? (**यः**) जो (**हितानि**) हित को (**न शृणोति**) नहीं सुनता है। (**कः**) कौन (**मूकः**) गूंगा है? (**यः**) जो (**काले**) समय पर (**प्रियाणि वक्तुम्**) प्रिय बोलना (**न जानाति**) नहीं जानता है।

**टीका :** अन्धः कः? यः अकार्यरतः हिंसा-व्यसन-परकन्यास्त्रीषु रतः इत्यर्थः? कः बधिरः? यः हितानि न शृणोति। स्वात्मार्थं हितवचनानि न श्रोतुमिच्छति सः। कः मूकः? यः काले सदवसरे प्रियाणि प्रियशिष्टवचनानि न वक्तुं जानाति।

**विवेचन :** यहाँ शारीरिक विकलांगता का नहीं किन्तु नैतिक विकलांगता का चित्रण किया गया है। जो आँखें प्राप्त करके भी नहीं करने योग्य, अहित के कार्यों में लगा है, वह वस्तुतः अंधा है। आँखों से भगवान् की मूर्ति भी देखी जा सकती है और भक्ति की जा सकती है किन्तु उन्हीं आँखों से जब मन की दबी इच्छाओं की पूर्ति करने वाले चित्र देखते हैं और संसार की चकाचौंध में खो जाते हैं तो हम आँख वाले अन्धे कहलाते हैं। विवेक की आँख जाग्रत करो, उसे खोलो। विवेक की आँख खोलकर जिन्होंने इस संसार को देखा वही जाग्रत है, बाकी तो सब

---

**जग में अन्धा कौन रहा है, जो निन्दित दुष्कार्य करे।**
**कौन रहा बहरा इस जग में, जो निज हित ना सुना करे॥**
**गूंगा कौन कहा जाता है, मुख होकर भी इस जग में।**
**मिष्ट वचन जो नहीं बोलता, कभी यहाँ शुभ अवसर में॥ 16॥**



अन्धापन ही है। ऐसे बहुत से लोग जो घर में रहे, समाज में रहे, राजनीति में रहे किन्तु, विवेक के साथ जिए। दूसरों को ठगना, पद का अहंकार, दुराचरण करना ऐसे कार्य हैं, जिनसे व्यक्ति सम्मान पाकर भी अपमान पाता है। जैसे-जैसे पद-प्रतिष्ठा आती है, धन सम्पत्ति बढ़ती है तो व्यक्ति के विवेक की आँख मुंदती जाती है। जिनका विवेक जाग्रत रहता है, वह एकान्त में भी विकार को प्राप्त नहीं होते हैं।

देखो! राम-लक्ष्मण का विवेक। जब चन्द्रनखा अपने पुत्र वध का बदला लेने के लिए भेष बदलकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई। रोने लगी। सीता ने उसकी दीन दशा देखी तो उसे धैर्य बंधाकर राम के पास लाई। राम ने पूछा - तुम कौन हो? इस घने जंगल में अकेली क्यों विचर रही हो? तब चन्द्रनखा ने कहा - हे पुरुषोत्तम! मेरी माँ का मरण हो चुका है, जब मैं छोटी थी, मैंने माँ को नहीं देखा। माँ के शोक में पिता भी परलोक चले गए। मैं पूर्व पाप के कारण इस दंडक वन में आ गई हूँ। बहुत दिन से इसी जंगल में भटक रही हूँ। मेरे पापों का आज नाश हुआ जो आप सरीखे महापुरुष के दर्शन हुए। अब मुझ पर कृपा करो। मुझे अपना लो। दोनों भाई एक दूसरे का मुँह देखने लगे और मौन से बैठे रहे और सोचते रहे कि कुलवती, शीलवती स्त्री ऐसे निर्लज्ज वचन नहीं कह सकती है। सो उन दोनों से अपनी इच्छापूर्ति असम्भव है, ऐसा जानकर वह चली गई।

आचार्य कहते हैं इसी का नाम विवेक है जो जंगल में रहते हुए भी इस आपत्ति से बच गए। परनारी के सम्पर्क की जिन्हें इच्छा नहीं हुई। आज का मनुष्य विचार करे कि इस स्थिति में वह यदि होता तो क्या करता?

बहरा वह है, जो अपने हित की बात नहीं सुनता। रावण के

अहंकार ने उसके कान बंद कर दिए थे। मंदोदरी रानी ने कहा - हे स्वामिन्! आप इस एक स्त्री के लिए इतना उत्पात क्यों झेल रहे हो? आप अठारह हजार स्त्रियों के नाथ हो। एक से एक सुन्दर आपकी रानियाँ हैं। आप हम सबको विधवा मत करो। नाथ! इस उपद्रव को रोक दो। राम की सीता राम को लौटा दो। रावण ने अपने बल अपनी शक्तियों को ज्ञान कराके मन्दोदरी को शान्त कर दिया। विभीषण भ्राता ने समझाया - मेरे ज्येष्ठ भ्राता! यह कार्य अयोग्य है, आप जैसे महापुरुषों को यह शोभा नहीं देता कि किसी की स्त्री को जबरदस्ती अपनाया जाए पर रावण अपने हित की बात सुनकर क्रोधित हो उठता। आचार्य कहते हैं कि यही बधिरता है।

गूँगा वह है, जो समय पर प्रिय बोलना नहीं जानता है। प्रिय वचन से विपरीत प्रवृत्ति करने वाले लोग भी अनुकूल बन जाते हैं। जब विभीषण राम के पास आए तो लक्ष्मण क्रोधित थे और भी लोग डरे हुए थे कि रावण का भाई अपने पास आकर कहीं अपना ही अहित न कर दे। राम ने विभीषण को भी अपने प्रिय वचनों से शरण दी और लक्ष्मण आदि को भी प्रिय वचनों से समझाया। पूरा माहौल तुरन्त शान्त हो गया और सभी निश्चिन्त हो गए।

इन प्रिय वचनों के कारण से ही माँ कैकेयी को भी राम ने उनकी गलती का एहसास कराया था। राम ने कहा कि आप मेरी माँ है। आपकी आज्ञा पालन करना मेरा कर्तव्य था और बाद में कैकेयी को लगा कि उसने अपने पुत्र व्यामोह में अपने पति दशरथ और पुत्र राम के साथ अन्याय किया। राम ने अपनी माँ से यह बात वनवास से लौट आने के अवसर पर कही थी, वनवास जाते समय नहीं। इसलिए अवसर पड़ने पर प्रिय सत्य वचन अवश्य बोलना चाहिए।





**किं मरणं मूर्खत्वं किं चानर्घ्यं यदवसरे दत्तम्।**
**आमरणात्किं शल्यं प्रच्छन्नं यत्कृतमकार्यम्॥ 17॥**

**अन्वयार्थ : ( मरणम् किम् )** मरण क्या है? **( मूर्खत्वम् )** मूर्खपना **( च )** और **( अनर्घ्यम् किम् )** बहुमूल्य क्या है? **( यदवसरे दत्तम् )** जो अवसर पर दिया जाय **( आमरणात् किं शल्यम् )** मरण समय तक शल्य क्या है? **( यत् अकार्यम् )** जो नहीं करने योग्य कार्य **( प्रच्छन्नं कृतम् )** गुप्त रीति से किया गया हो।

**टीका :** किं मरणम्? मूर्खत्वम् बुद्धि शून्यो मनुष्यो गृहाय परिवाराय, समाजाय व्यर्थस्तेन मरणसमं तस्योत्पत्तिः कथिता। यद्यपि मूर्खत्वमपि पूर्वार्जितपापकर्मवशात् भवति तथापि तेन कस्यापि हितं न भवतीति कारणादत्र मरणं कथितम्। अनर्घ्यं बहुमूल्यवस्तु च किम्? यत् अवसरे दत्तं दानम्। आवश्यकतासमये यत् प्रदीयते तत्तस्मै बहुलाभकारि भवतीत्यर्थः। आमरणात् शल्यं किम्? यत् अकार्यं पापं गर्भघातबलात्कार-धनापहरणादिकार्यं प्रच्छन्नं गुप्तरूपेण कृतं तत्।

**विवेचन :** जो मूर्ख है उसका जीवन निर्वाह होना कठिन हो जाता है, इसलिए वह मरे हुए के समान है। मूर्ख व्यक्ति घर-परिवार के लिए भी बोझ रहता है। इसलिए जितना बन सके विद्याध्ययन करके सन्तान को बुद्धिमान बनाना चाहिए। माता-पिता का यह प्रथम कर्तव्य है। जो माता-पिता बचपन से ही सन्तान के विद्या अध्ययन का समीचीन प्रयत्न

---

**मरण समय कष्ट देता क्या, मूर्खपना इस प्राणी को।**
**क्या अमूल्य है वस्तु लोक में, अवसर पर जो दानी हो॥**
**मरण समय तक चुभे हृदय में, ऐसी शल्य कौन-सी है।**
**गुप्तरीति से किया गया जो, पाप कम्र पीड़ा सी है॥ 17॥**

नहीं करते हैं, वह उनके शत्रु हैं और वह पुत्र जीवन पर्यन्त मरण समान पीड़ा दायक हो जाता है।

जिस समय जिस चीज की जरूरत हो, उसी समय उसे योग्य वस्तु मिल जाए तो वह दान बहुमूल्य होता है। भामाशाह का दान अमूल्य दान बन गया क्योंकि महाराणा प्रताप को वह जिस समय दिया गया उस समय उसकी महती आवश्यकता थी। हिंसा, झूठ आदि पाँच पापों में से कोई भी किया हुआ पाप व्यक्ति को मरण पर्यन्त उसके हृदय में कांटे की तरह चुभता है। इसलिए हे आत्मन्! कभी भी छिपाकर पाप मत करो। यदि हो गया हो तो गुरु से प्रायश्चित्त लेकर अपने मन की शल्य दूर करो।

**कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधे दाने।**
**अवधीरणा क्वकार्या खल परयोषित्परधनेषु ॥ 18 ॥**

**अन्वयार्थ :** ( **यत्नः** ) प्रयत्न ( **कुत्र** ) कहाँ ( **विधेयः** ) करना चाहिए ( **विद्याभ्यासे** ) विद्या के अभ्यास में ( **सदा** ) तथा हमेशा ( **औषधे दाने** ) औषध दान में। ( **क्व** ) कहाँ ( **अवधीरणा** ) अनादर ( **कार्या** ) करना चाहिए? ( **खल-परयोषित्-परधनेषु** ) दुष्ट, परस्त्री और पर धन में।

**टीका :** कुत्र यत्नः विधेयः? विद्याभ्यासे ज्ञानाभिवृद्धितदुपार्जन - विषये। सदा औषधे दाने च। औषधदानात् प्राणानामुपकारात् पुनरुज्जीवितात् च जीवस्य कृते उपकारो भवति। क्व अवधीरणा उपेक्षा कार्या? खल-परयोषित्परधनेषु दुष्टपुरुषे परस्त्रीकन्यासु परकीयधनेषु चेत्यर्थः।

---

**कहाँ यत्न करना है तुमको, सुनो भव्य! पूरे मन से।**
**विद्या का अभ्यास करो अरु, औषधिदान करो मन से॥**
**किन-किन कार्यों से नित तुमको, दूर सदा रहना बचना।**
**दुष्ट जनों से पर स्त्री से, पर धन वैभव से बचना॥ 18 ॥**





**विवेचन :** अरे गृहस्थ बन्धो! यह जानो कि किस दिशा में हमें प्रयास करना है। गृहस्थ के लिए हमेशा विद्या अभ्यास का प्रयत्न करते रहना चाहिए। विद्याभ्यास से एक ओर मानसिक दक्षता बढ़ती है तो दूसरी ओर सामाजिक सम्मान भी बढ़ता है। जो विद्या हमें प्राप्त है, उसका अभ्यास करते रहने से वह विद्या विस्मृत नहीं होती है और उसमें निखार आता रहता है। 'अनाभ्यासे विषं विद्या' अर्थात् विद्या का अभ्यास नहीं रहने पर वह विष हो जाती है। विद्या शब्द के कई अर्थ होते हैं। विद्या का प्रयोजन, अर्थ जिसे हो वह विद्यार्थी कहलाता है। इस परिभाषा से विद्यार्थी जीवन में अर्जित ज्ञान विद्या कहलाती है। दूसरा विद्या अर्थात् शस्त्र विद्या, संगीत विद्या, न्याय विद्या, आयुर्वेद विद्या, चित्रकार विद्या, ज्योतिष विद्या आदि ऐसी विद्याएँ हैं, जो जीवकोपार्जन में काम आती हैं। विद्यार्थी जीवन के बाद यह विद्याएँ जीवन चलाने के लिए और धनोपार्जन के लिए होती हैं। तीसरी तरह की विद्या का अर्थ है केवलज्ञान। वह ज्ञान जो पूर्ण है, आत्मिक है और शाश्वत है। कहीं-कहीं पर विद्या और बुद्धि में अन्तर भी देखा जाता है। देखा जाता है कि विद्यावान पुरुष के पास यदि बुद्धि नहीं है तो वह विद्या उसी के लिए घातक हो जाती है।

एक घटना है - पौण्ड्रवर्धन नगर में चार मित्र अपनी-अपनी विद्या में पारंगत होकर साथ-साथ रहते थे। उनमें से एक शिल्पकार था, एक चित्रकार था, एक वणिक् पुत्र था और एक मन्त्र शास्त्र का ज्ञाता। कुछ दिनों बाद चारों मित्र धन कमाने के लिए चले। चलते-चलते वे भीषण जंगल में पहुँचे। रात हो गयी। आपस में उन लोगों ने विचार किया कि हम लोगों में प्रत्येक को एक-एक पहर तक जागरण करना चाहिए। अन्यथा चोर, शेर आदि से कुछ अनिष्ट हो सकता है। पहले पहर में शिल्पकार जागा। नींद न आये और समय कट जाए, इस भाव से शिल्पी ने लकड़ी लाकर एक विशाल सिंह तैयार कर दिया। इतने में चित्रकार को जागने का समय आ गया। शिल्पी चित्रकार को जगाकर सो गया।

चित्रकार ने देखा एक लकड़ी का सिंह सामने खड़ा है। उसने समझ लिया कि शिल्पी ने इस उपाय से जागरण किया है। वह भी सिंह के पास पहुँचा और विद्या को दिखाने के लिए उस सिंह को लाल-काले-पीले आदि रंगों से चित्रित कर दिया। वह अब सचमुच का सिंह दिखने लगा। वह मन्त्रज्ञ को जगाकर सो गया। मन्त्रविद् ने जब वह सिंह देखा तो डर गया और सबको जगाकर बोला-उठो-उठो। तब अन्य मित्रों ने उसे समझाया। अपनी अज्ञानता को सहन नहीं करता हुआ वह मन्त्रकार कहने लगा कि मैंने इसे मंत्र से कीलित कर दिया है। वास्तविक सिंह है। मन्त्रकार ने सोचा यदि इन लोगों ने अपनी विद्या का प्रयोग किया है तो मैं भी इसे जीवित न बना दूँ तो मन्त्रकार नहीं। उसने मित्रों से कहा यदि आपको विश्वास नहीं है तो मेरी विद्या का चमत्कार देखो।

अन्य लोगों ने उस पर हँसकर पुनः सोने का मन बना लिया। वणिक् पुत्र को लगा कि कुछ भी गड़बड़ हो सकता है, सो वह लघु शंका का बहाना बनाकर चला गया और एक पेड़ पर बैठ गया। इधर मन्त्रकार ने उसे मंत्र विद्या से जीवित सिंह बना दिया। उस सिंह ने मन्त्रकार सहित दोनों को खा लिया। मात्र वणिक् जीवित बचा। इसलिए विद्या के साथ बुद्धि भी होना चाहिए।

हे बन्धु! हमेशा औषधिदान में तत्पर रहो। निरोग होना ही मनुष्य का प्रथम सुख है। कहा भी है - ''पहला सुख निरोगी काया'' जो व्यक्ति दूसरों को रोगी, पीड़ित देखकर उनकी मदद करते हैं, उनसे बढ़कर पुण्यवान कोई नहीं होता है। औषधिदान से प्राण मिलते हैं। पंचेन्द्रिय जीव के प्राणों की रक्षा करना जीवन दान है। औषधि दान देने वाला व्यक्ति सदैव प्रसन्न रहता है। परोपकार में उसे जो आनन्द आता है, वह उसे सबसे बड़ा आनन्द महसूस होता है। वैद्य, चिकित्सक की तुलना भगवान् से की गई है।



''आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो, वैद्यो यथा नाथ रुजां प्रशन्त्यै।'' आचार्य समन्तभद्र स्वामी स्वयंभूस्तोत्र में कहते हैं कि हे सम्भवनाथ भगवन्! आप इस धरा पर आकस्मिक वैद्य के समान अवतरित हुए थे। जैसे वैद्य रोगों की शान्ति के लिए होता है उसी प्रकार आप भव्य जीवों के जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों को दूर करने वाले थे।

औषधिदान करने वाला जीव नियम से परभव में उत्कृष्ट वज्रऋषभनाराचसंहनन को धारण करने वाला और सदा निरोग होता है। धर्मात्मा यदि धार्मिक की वैयावृत्ति (सेवा) नहीं करता है और उसकी उपेक्षा करता है तो उससे बड़ा पापी कोई नहीं है। आचार्य जिनसेन देव कहते हैं कि - ''गृहस्थ की तो बात ही क्या? प्रासुक द्रव्य के द्वारा वैयावृत्य करने में तत्पर रहने वाले मुनियों को भी उससे बन्ध नहीं होता है किन्तु निर्जरा ही होती है। इस संसार में शरीर ही प्राणियों का सबसे पहला धर्म का साधन है इसलिए यथाशक्ति उसकी रक्षा करना चाहिए, यही आगम का विधान है।'' (ह.पु.18/142-143)

हे भव्य! दुष्ट जीवों से, परस्त्री और पर धन से अनादर रखो, उसकी उपेक्षा करो। माँस खाने वाले, शराब पीने वाले, जीवों की हत्या करने वाले और चोरी करने वाले, लड़ने-झगड़ने के स्वभाव वाले लोगों से दूर रहो। उनकी संगति आपत्ति में डालने वाली और अपवाद करने वाली होती है। यदि ऐसे दुष्ट जीवों के चंगुल में फँसकर एक बार धोखा भी खा लिया हो तो आगे के लिए उनकी उपेक्षा कर दो। उनकी मीठी-मीठी बातें आपके लिए पुनः घातक हो सकती हैं।

पर स्त्री की चाह रखना नरकगति का कारण है। परस्त्री से तात्पर्य मात्र इतना ही नहीं समझना चाहिए कि किसी की विवाहिता स्त्री ही पर स्त्री है।

कुछ पढ़े लिखे युवा भाई यह तर्क भी देते हैं कि महाराज! सप्त

व्यसन में पर स्त्री के संपर्क का मना किया है। मेरा सम्बन्ध तो अविवाहिता लड़की से है, वह तो किसी की स्त्री नहीं है। सो भैया! ऐसे कुतर्क भी पाप को बढ़ाने वाले हैं। स्त्री चाहे विवाहित हो या अविवाहित, विवाह सम्बन्ध के बिना वह पर ही है। पर स्त्री से तात्पर्य है किसी दूसरे की कन्या, स्त्री से सम्बन्ध रखना।

मेरे युवा भ्रात! विद्यार्थी जीवन एक तपस्या है, इस समय मात्र पढ़ाई की ओर ही ध्यान रखना चाहिए। विद्यार्थी जीवन में किया गया पर स्त्री सम्बन्धी पाप आगे के पूरे जीवन में अशान्ति पैदा करता है। अग्नि की तरह पर स्त्री से बचो।

जिनका उद्देश्य मात्र बड़ा आदमी या बहुत धनवान् मनुष्य बनने का रहता है, वह दुर्जन की संगति में भी पड़ जाता है, पर स्त्री के चक्कर में भी पड़ जाता है और परधन को हड़पने के भाव भी वह करता है। सज्जन पुरुष दूसरे के धन-वैभव को नाग के मुख में रखी मणि के समान समझते हैं। उस मणि को कभी ग्रहण करने की वह नहीं सोचते हैं। पर स्त्री और पर-धन की लालसा में आज चारों ओर कत्ल, हत्याएँ, कोर्ट, कचहरी जैसी वारदातें निरन्तर प्रतिदिन देखने-सुनने को मिल रही हैं। इस विषय में प्रत्यक्ष ही सब अनुभव में आ रहा है। अतः अधिक समझाने की जरूरत नहीं है। हाँ! एक बात है, पिता का धन यदि किसी कारण भाई के पास रह जाता है तो उसमें भी हे भ्रात! तुम दुःख मत करो। तुम इस कारण से अपने पिता, अपने भाई और अपनी माँ आदि परिवार के लोगों से बैर मत करो। अपने भाग्य में जितना था उतना मुझे मिल गया है, मिल रहा है। अधिक की लालसा में कषायें करके अपनी आत्मा का अहित मत करो। अपने भाग्य पर भरोसा रखो और अपना पुरुषार्थ करो। पिता का धन भी पर-धन समझ कर छोड़ दो। इस दुनिया में कोई हमेशा अमीर नहीं रहा और कोई हमेशा गरीब भी नहीं रहा है। सबके दिन बदलते हैं, अच्छे भावों से अपना पुरुषार्थ करते रहो। धन-वैभव-शोहरत-





इज्जत सब अपने आप मिल रही है तो इसे पूर्वजन्म का पुण्य कर्म का फल समझ कर निर्लिप्त भाव से भोगो और यदि नहीं मिल रही है तो अच्छे कर्म, अच्छे विचारों से अर्जित करो।

**काहर्निशमनुचिन्त्या संसारासारता न च प्रमदा।**
**का प्रेयसी विधेया करुणादाक्षिण्यमपि मैत्री ॥ 19 ॥**

**अन्वयार्थ** : ( **अहर्निशम्** ) रात-दिन ( **का** ) क्या ( **अनुचिन्त्या** ) चिन्तन करना चाहिए? ( **संसारासारता** ) संसार की असारता का ( **न च प्रमदा** ) स्त्री का नहीं। ( **का प्रेयसी विधेया** ) किसे प्रेमिका बनाना चाहिए? ( **करुणा-दाक्षिण्यम् अपि** ) करुणा, नम्रता और ( **मैत्री** ) मैत्री भाव को।

**टीका** : अहर्निशं प्रतिसमयम्। का अनुचिन्त्या चिन्तनस्य विषयः? संसारासारता संसारस्य असारतायाः चिन्तनं प्रतिदिनं कर्तव्यम्। न च प्रमदा स्त्रीविषये। का प्रेयसी विधेया? कया सह प्रेम कर्तव्यमित्यर्थः। करुणा-दाक्षिण्यमपि मैत्री तत्र करुणा जीवदया, दाक्षिण्यं कस्मिन्नपि सत्कार्ये दक्षता, मैत्री सद्भावः सर्वान् प्रति।

**विवेचन** : हे भव्यात्मन्! रात-दिन संसार की असारता का चिन्तन करो, स्त्री का नहीं। स्त्री के काम भोग का चिन्तन अनन्त बार हुआ, उनको भोगा है, अनुभव किया है। स्त्री का चिन्तन संसार वृद्धि का कारण है और संसार की असारता का चिन्तन वैराग्य वृद्धि का कारण है।

---

**इस संसृति में निशदिन किसका, चिन्तन करने लायक है।**
**ज्ञानी को निस्सार जगत् है, स्त्री चिन्तै नालायक है॥**
**किससे प्यार करो तुम नित ही, और प्रेमिका सम नित प्रेम।**
**करुणा भाव तथा चतुराई और मित्रता से नित प्रेम॥ 19 ॥**

अपने मानस पटल पर यदि कभी उनके हाव-भाव-विलास का चिन्तन आता है तो उससे बचने के लिए और मन को स्थिर रखने के लिए उनके शरीर की अशुचिता का चिन्तन करो। हाड़-माँस से बना यह शरीर रक्त-पीव, रज आदि अशुचि पदार्थों से भरा हुआ विष्ठा-मूत्र आदि का पिण्ड घट है। कामी पुरुष मोह के कारण चमड़ी को चाटता है और भोग सेवन करके खेद-खिन्न होता है। उसे थकान को सुख कहना एक भ्रम है, मोह के कारण बुद्धि की विपरीतता है, ऐसा चिन्तन करके प्रमाद से उत्पन्न होने वाले मद से अपने मन को विरक्त करो।

हे ब्रह्मचारिन्! मात्र ब्रह्मचर्य व्रत ले लेने से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता किन्तु अनादिकालीन मोह की वासना को दूर करके ब्रह्म-आत्मा की रुचि करने से ब्रह्मचर्य होता है। इस ब्रह्मचर्य की भावना के लिए संसार की असारता का चिन्तन करो। यदि स्त्री शरीर में असारता का चिन्तन करके उससे विरक्ति आ गई तो संसार अपने आप असार हो जाएगा। स्त्री का नाम ही संसार है। स्त्री का नाम गृह है और स्त्री की स्वीकारिता का नाम ही गृहस्थी है। इसलिए हे मोक्षपथ के पथिक! अपनी प्रेयसी के रूप बदल दो। अब करुणा, नम्रता और मैत्री को अपनी प्रेयसी बनाओ। इनसे ही प्रेम करो।

करुणा प्रेयसी में अपना मन लगाने से मन विशुद्ध होता है। भगवान् जिनेन्द्र की आज्ञा का पालन होता है और सभी जीवों के हित की भावना होती है। आत्म साम्राज्य तक पहुँचाने के लिए यह करुणा ही जीवन साथी है। ''धम्मो दया विसुद्धो'' धर्म वही है जो दया से विशुद्ध है। आचार्य कुन्दकुन्ददेव की इस वाणी को आत्मसात् करो। दया से द्रवित हृदय में ही सद्गुणों का वास होता है। तीर्थंकर बनने वाले भगवान् पार्श्व ने नाग-नागिन युगल को दया से ही उपदेश सुनाया और उनका उद्धार किया। श्रीराम ने जटायु पक्षी को दया से पाला। दया भाव से





अभिभूत होकर ही चारणऋद्धि मुनिराज ने सिंह की पर्याय में महावीर भगवान् के जीव को सम्बोधा। दया-करुणा से ही यह मोक्षमार्ग चलता है। भगवान् तीर्थंकर दया से ही बनते हैं। ऐसी करुणा ही मेरी अनन्य प्रेमिका बनी रहे।

करुणा के साथ ही रहने वाली उसी की सहेली नम्रता-शिष्टता है। सो जहाँ करुणा जाती है, नम्रता अपने आप उसे आत्मा का स्वीकार लेती है करुणा से मुलायम हुआ हृदय ही नम्रता और शिष्टता का व्यवहार कर पाता है। नम्र व्यक्ति ही सभ्य होता है और शिष्टाचार का पालन करता है। वही व्यवहार कुशल और चतुर कहलाता है। यह प्रेमिका बड़े-बड़े काम भी आसान बना देती है। इसलिए हे भव्यात्मन्! हनुमान, सुग्रीव और विभीषण की तरह तुम भी इसी से प्रेम करो।

तीसरी सहेली है, मैत्री। यह तो इतनी उदार है कि दुश्मन को भी दुश्मन नहीं मानती और अपने व्यवहार से दुश्मन को भी दोस्त बना लेती है। इस प्रेयसी के लिए जो आत्मा चाहता है वह महापुरुष, उदारचेता बन जाता है। इससे प्रेम करने वाला किसी की भी बुराई नहीं कर सकता और दोषों को ढांकने की उस आत्मा में अद्भुत क्षमता आ जाती है। इससे प्रेम करने वाला कभी भी किसी का अपमान देखकर हर्षित नहीं होता है अपितु दुःखी होता है। वह महापुरुष अपने समान सभी को बनाने की इच्छा करता है।

हे आत्मन्! वैसे तो आत्मा में अनन्त गुण हैं, पर इन तीन गुणों से प्रेम करने वाला अपने आप अनन्त गुणों का सम्राट बन जाता है। ''गुणों की वृद्धि गुणों की आराधना से ही होती है।''

The rase for quality has no finish line. अर्थात् गुणों की प्राप्ति के लिए दौड़ हमेशा जारी रहती है।

**कण्ठ गतैरप्यसुभिः कस्यात्मा नो समर्प्यते जातु।**
**मूर्खस्य विषादस्य च गर्वस्य तथा कृतघ्नस्य॥ 20॥**

**अन्वयार्थ** : ( **कण्ठ गतैः असुभिः अपि** ) कण्ठगत प्राण होने पर भी ( **आत्मा** ) अपने को ( **कस्य** ) किसे ( **जातु न** ) कभी भी ( **समर्प्यते** ) समर्पित ( **न** ) नहीं करना चाहिए? ( **मूर्खस्य** ) मूर्ख को ( **विषादस्य च** ) खेद-खिन्न पुरुष को ( **गर्वस्य** ) घमण्डी को ( **तथा** ) तथा ( **कृतघ्नस्य** ) कृतघ्न को।

**टीका** : कण्ठगतैः अपि असुभिः कस्य जनस्य आत्मा स्वकीयं नो जातु कदाचित् न समर्प्यते? मूर्खस्य बुद्धिरहितस्य, विषादस्य दुःखितस्य, च तथा गर्वस्य अभिमानशीलस्य, कृतघ्नस्य कृतं उपकारं न मनुते यः तस्य।

**विवेचन** : श्रद्धा-समर्पण से ही इस लोक का व्यवहार चलता है। हर आदमी कहीं न कहीं अपने को समर्पित कर ही देता है। यहाँ ग्रन्थकार ने चेतावनी दी है, कि ऐसे व्यक्तियों के सामने अपने को समर्पित न करो जो मूर्ख हों। मूर्ख व्यक्ति काम ही नहीं बिगाड़ता किन्तु आपत्ति में भी डाल देता है, सर्व विनाश कर देता है। देखो! पर्वत, वसु और नारद एक साथ पढ़े थे। उनमें पर्वत मूर्ख था, दुर्बुद्धि था। वसु जब राजा बना तो पर्वत की माँ के कहने से राजा वसु ने पर्वत के पक्ष में निर्णय दे दिया। मूर्ख पर्वत के व्यामोह में माँ ने राजा वसु को नरक पहुँचा दिया। मूर्ख का उपचार

---

**प्राण कण्ठगत हो यदि तो भी किसके ना आधीन बने।**
**मूर्ख जनों की पराधीनता, बनते भी सब कार्य हने॥**
**जो अभिमानी पुरुष उसे भी कभी समर्पित करो नहीं।**
**पर उपकार नहीं माने जो उस कृतघ्न से डरो यहीं॥ 20॥**



करने अथवा उसकी बात मानना ही उसके प्रति समर्पण है। इस समर्पण के कारण राजा वसु नरक गया।

जो खेद-खिन्न हो, किसी विषाद में डूबा हो ऐसे व्यक्ति को भी आत्म समर्पण नहीं करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति का विश्वास नहीं करना चाहिए। एक बुढ़िया ने रास्ते चलते एक आदमी को थोड़ा रोककर कहा कि यह मेरी गठरी थोड़ी दूर ले चलो। पहले तो वह व्यक्ति इंकार करके चला गया। थोड़ी देर बाद जब उसके मन में आया कि गठरी उठा लेते और चलते बनते तो वह लौटा। उसने बुढ़िया की गठरी माँगी। बुढ़िया ने उसके चेहरे को पढ़ लिया और उसके मन के अवसाद को भाप लिया। बुढ़िया ने गठरी देने से मना किया और कहा मैं जिसे गठरी देना चाहती थी, वह आदमी दूसरा था और तुम दूसरे हो।

विभीषण ने अपने भाई रावण को घमंडी जान कर छोड़ दिया था और अपना आत्महित किया। जिन्होंने रावण को अपना समर्पण किया वे बहुत से लोग युद्ध में मारे गये।

राजा सुभौम का रसोइया मरकर कृतघ्नी हो गया था। सुभौम ने जब उस देव-रसोइया को समर्पण किया तो चक्री होकर भी मारा गया।

**कः पूज्यः सद्वृत्तः कमधनमाचक्षते चलितवृत्तम्।**
**केन जितं जगमेतत् सत्यतितिक्षावता पुंसा॥ 21॥**

**अन्वयार्थ** : ( **पूज्यः कः** ) पूज्य कौन है? ( **सद्वृत्तः** )सम्यक्

---

**पूज्य कौन है इस धरती पर जिसका सम्यक् चरित रहा।**
**निर्धन किसको कहते जिनवर, जिसका चारित चलित रहा॥**
**जग में रहकर भी इस जग को, किसने जीत लिया सुन लो।**
**सत्य पुरुष तो दुर्लभ जग में, जो सहिष्णु उसको चुन लो॥ 21॥**

चारित्र वाला। ( **अधनम् कम आचक्षते** ) निर्धन किसे कहते हैं? ( **चलितवृत्तम्** ) जिसका चारित्र अस्थिर है। ( **केन जितम् एतत् जगत्** ) यह संसार किसने जीता? ( **सत्य-तितिक्षावता पुंसा** ) सत्य और सहनशील पुरुष ने।

**टीका** : कः पूज्यः? सद्वृत्तः सम्यक्चारित्रम्। आत्मनः शुद्ध्यर्थं कर्मक्षयार्थं यः सम्यग्दर्शनज्ञानपुरस्सरं चारित्रं पालयति स जनः पूज्यः। अधनं धनेन रहितं कम् आचक्षते ब्रुवन्ति? चलितवृत्तम् चारित्रं गृहीत्वा पुनस्त्यजति समीचीनतया न वा पालयति। एतत् जगत् केन जितम्? पुंसा पुरुषेण। कथंभूतेन? सत्यतितिक्षावता छलेन बिना सत्यमार्गानुसारी। तितिक्षा सहिष्णुता सहनशीलता। सत्यं च तितिक्षा च यस्य स्तः सः।

**विवेचन** : जिसका आचरण समीचीन है, शुद्ध है वह आत्मा पूज्य है। उसका शरीर भी पूज्य है। सम्यक्चारित्र को पालन करने वाले का ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान होता है और श्रद्धा भी सम्यक् होती है। भगवती आराधना में आचार्य देव कहते हैं कि जिसने सम्यक्चारित्र का पालन किया, उसकी आराधना की है, उसने नियम से सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान की आराधना भी कर ली। सम्यग्दर्शन आदि की आराधना करने पर अन्य सम्यक्चारित्र आदि की आराधना का कोई नियम नहीं है। इसलिए इस संसार में चारित्र पूज्य है, चारित्रवान पूज्य है।

हे भव्यात्मन्! कभी भी चारित्रवान् की निंदा नहीं करना। लोग चन्द्रमा को भले ही कलंकी कहें पर याद रखना चन्द्रमा जैसी शीतलता और चाँदनी कहीं किसी को प्राप्त नहीं हो सकती है, उसी प्रकार महान् व्रतों को धारण करने वाले पुरुष का कोई भले ही अपवाद करे किन्तु उसकी महानता को कोई प्राप्त नहीं कर सकता है।

हे भव्य पुरुष! पूज्य पूजा के ही योग्य होते हैं, निंदा के नहीं।





सूरज के ऊपर थूकोगे वह थूक थूकने वाले के ऊपर ही गिरता है उसी प्रकार निंदा करने वालों को ही स्वयं के भावों से पाप बंध होता है और निंदा ही मिलती है।

चन्द्रमा और सूरज जैसे उदारता महानता और पूज्यता के प्रतीक हैं, उससे भी कहीं अधिक चारित्रवान् पूज्य है। पूज्य पुरुष भी ऐसे चारित्रवन्तों की स्तुति करते हैं-

**शीलप्रावरणा गुण प्रहरणाश्चन्द्रार्कतेजोऽधिकाः।**
**मोक्षद्वारकपाटपाटनभटाः प्रीणंतु मां साधवः॥**

**( आचार्य भक्ति, 5 )**

अर्थात् जो शील का आवरण ओढ़े हैं और गुणों के शस्त्रों से अपनी आत्म रक्षा करते हैं, वह चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेज धारण करने वाले तथा मोक्ष के द्वार पर लगे कपाट को खोलने में योद्धा की तरह उद्यत हैं, वह साधुजन मुझे प्रसन्न करें।

इसके विपरीत निर्धन वह है जो चारित्र में दृढ़ नहीं है अथवा जिसका चारित्र चलायमान हो चुका है, जिसने चारित्र छोड़ दिया है। तीन लोक की बहुमूल्य संपदा जिसके सामने झुकती है, उस रत्नत्रय सम्पदा को प्राप्त करके ही जो लोग उसे छोड़ देते हैं, उनसे बढ़कर इस दुनिया में कोई भिखारी नहीं, कोई दरिद्री नहीं है। किसी ने कहा है-

If wealth is lost nothing is lost.
If health is lost something is lost.
If correter is lost everything is lost.
अर्थात् यदि धन नष्ट हो जाये तो समझो कुछ नहीं गया।
यदि स्वास्थ्य गया समझो कुछ खो गया।
और यदि चारित्र चला जाये तो समझो सब कुछ चला गया।

हे सद्गृहस्थ! कभी ऐसा आचरण मत करना, जिससे मान-प्रतिष्ठा चली जाये और समाज तथा देश में निंदा न हो। धन के लोभ में अपने ईमान को मत बेचो। अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए जो पाप से बचा रहता है, वह व्यक्ति दुनिया की नजरों में भले निर्धन हो पर साधुओं की दृष्टि में वह धनवान् है। ईमान से जीवन जीने वाला ही इंसान है और बेईमानी से जीवन जीने वाला शैतान।

यह संसार उन्हीं लोगों से जीता जाता है, जो सत्य निष्ठ होते हैं तथा सहनशील होते हैं। इस जगत् में चारों ओर पाप है, असत्य है। सत्य में निष्ठा रखने वाला सहिष्णु भी होता है। सत्य को विजय अन्त में मिलती है। असत्य से लड़ने के लिए सत्य को सहनशीलता धारण करनी होती है। इसलिए सत्य और सहिष्णुता को यहाँ एक साथ लिखा है। राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिए क्या कुछ सहन नहीं किया? सती अञ्जना ने सत्य के लिए अपमान-दुत्कार और जंगल के कष्ट झेले। जितने भी पुरुष महान् बने हैं, हुए हैं वह सत्य और सहिष्णुता से ही बने हैं।

देखो! भद्रमित्र नामक एक व्यापारी सत्यघोष के पास अपने रत्न रखकर चला गया। जब भद्रमित्र वापस आया और उसने रत्न मांगे तो सत्यघोष बदल गया और कहने लगा मैं कुछ नहीं जानता। जब भद्रमित्र रोने चिल्लाने लगा तो सत्यघोष ने लोगों से कह दिया कि यह पागल हो गया है और हम पर आरोप लगा रहा है। भद्रमित्र अनाथ सा रह गया, उसकी बात कोई नहीं सुनता तो भी उसने अपना रोना नहीं छोड़ा और सत्य को चिल्ला-चिल्लाकर रोजाना कहता रहता। एक दिन रानी ने उसकी आवाज सुनकर सोचा कि "पागल कभी एक ही बात की रट नहीं लगाता है, जरूर कुछ दाल में काला है।" रानी ने अपने विचार राजा से कहे और सत्यघोष मंत्री के साथ जुआ खेलकर उसका यज्ञोपवीत और उसके नाम की अंगूठी जीत ली। उसके बाद धाय को समझाकर मंत्री के घर भेजा और मंत्री की स्त्री से मंत्री की दोनों चीजें दिखाकर वह रत्न





पिटारा लाने में सफल हुई। भद्रमित्र ने अपने रत्न पहचान लिए और सत्य के लिए सहनशील होकर उस सत्यघोष को सजा दिलवायी।

**कस्मै नमः सुरैरपि सुतरां क्रियते दया प्रधानाय।**
**कस्मादुद्विजितव्यं संसारारण्यतः सुधिया॥ 22॥**

**अन्वयार्थ :** ( **सुरैः अपि** ) देवों के द्वारा ( **कस्मै** ) किसके लिए ( **सुतराम्** ) अच्छी तरह ( **नमः क्रियते** ) नमस्कार किया जाता है? ( **दया प्रधानाय** ) दया प्रधान पुरुष के लिए ( **सुधिया** ) बुद्धिमान को ( **कस्मात्** ) किससे ( **उद्विजितव्यम्** ) दूर होना चाहिए? ( **संसारारण्यतः** ) संसार रूपी जंगल से।

**टीका :** सुरैर्देवैरपि सुतरां आधिक्येन कस्मै नमः क्रियते? दया प्रधानाय यस्य चित्ते दया वसति मुख्यतया तस्मै। दयाधर्म एव महान् यतः। कस्मात् उद्विजितव्यं भेतव्यम्? संसारारण्यतः संसार एव अरण्यं काननं तस्मात्। केन पुरुषेण? सुधिया बुद्धिमत्पुंसा।

**विवेचन :** जो व्यक्ति दयालु होता है, उसे देव भी नमस्कार करते हैं। दया आत्मा का धर्म है। अन्य जीवों के प्रति करुणाभाव होना दया है। दयावान् जीव किसी को हानि नहीं पहुँचाता है। जो जीव अच्छे कुल में उत्पन्न हुए हैं, उन्हें दया धारण अवश्य करना चाहिए। त्रस जीवों को मारने का भाव नहीं होना और उन पर दया धारण करना प्रत्येक सद्गृहस्थ का कर्तव्य है। जो व्यक्ति अनावश्यक रूप से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति की हिंसा नहीं करता है, वह भी दयावान् है। इन पाँच स्थावर

---

**देव लोग भी किसको नित प्रति, नमस्कार कर खुश होते।**
**जिसके चित में दया निवसती, उसकी पद रज नित धोते॥**
**बुद्धिमान को इस दुनिया में किससे नित डरना होता।**
**यह संसार एक जंगल है, जिससे नित डरना होगा॥ 22॥**

जीवों में भी उसी काय के जीव रहते हैं, ऐसा जानकर जो पृथ्वी आदि का अनावश्यक हनन नहीं करता है, वह दयालु गृहस्थ होता है। महाव्रतों को धारण करने वाले पृथ्वी आदि पाँच स्थावर और त्रस जीव इन छह काय के जीवों की हिंसा से सर्वथा विरक्त रहते हैं। पात्रता के अनुसार दया धर्म का पालन होता है। कोई चाण्डाल, धीवर आदि नीच कुल में उत्पन्न हुए हैं और जिनकी आजीविका ही हिंसा से चलती है तो ऐसे जीव भी थोड़ी-सी दया का पालन करके भविष्य को सुधार लेते हैं और हमेशा के लिए नीच कुल में उत्पन्न होने के दुःख से मुक्त हो जाते हैं।

एक चाण्डाल ने कभी मात्र चतुर्दशी को हिंसा नहीं करने का संकल्प लिया। एक बार राजा ने राजपुत्र को फाँसी देने के लिए चाण्डाल को बुलाया। उस दिन चतुर्दशी थी, सो उसने अपनी पत्नी से कह दिया कि राजा के लोगों से मना कर दो और कह दो कि वह घर पर नहीं है। राजा के व्यक्तियों ने लौटते समय कहा कि आज तो चाण्डाल का बड़ा नुकसान हो गया। राज पुत्र को फाँसी मिलती तो बहुत धन उसे मिलता। इतना सुनते ही उस स्त्री ने इशारा कर दिया कि वह अंदर है। चाण्डल को जबरदस्ती ले जाया गया। राजा के समक्ष भी उसने कहा कि मैं आज हिंसा नहीं करूँगा। राजा ने गुस्से में आकर उसे भी उस राज पुत्र के साथ मारने के आदेश दे दिए। दोनों को एक साथ सजा दी गई। चाण्डाल की रक्षा सहसा देवों ने आकर की और उस चाण्डाल की पूजा उच्च आसन पर बैठाकर की। यह देखकर राजा को दया धर्म का मर्म समझ में आया। आचार्य श्री ने लिखा है -

पानी भरते देव हैं वैभव होता दास।
मृग मृगेन्द्र मिल बैठते देख दया का वास॥

**प्रश्न** : बुद्धिमान पुरुषों को किससे डरना चाहिए?

**उत्तर** : संसार रूपी जंगल से। संसार में पुनः-पुनः जन्म-मरण





करके प्रत्येक योनि में आत्मा ने अपार दुःख सहे हैं। उन दुःखों की पुनः प्राप्ति न हो इसलिए इस संसार रूपी जंगल से डरो। सम्यग्दृष्टि जीव की चार भावनाएँ हमेशा बनी रहती हैं-प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य। क्रोध आदि नहीं करना प्रशम भाव है। संसार से डरना संवेग भाव है। जीवों के प्रति दया रखना अनुकम्पा है और छह द्रव्यों का अस्तित्व मानना तथा जिनदर्शन में श्रद्धा रखना आस्तिक्य है। इस श्लोक में अनुकम्पा और संवेग भाव का दिग्दर्शन है

हे भव्य! दया भाव और संवेग भाव का परस्पर सम्बन्ध है। जो संसार से डरा होगा वही दूसरे जीवों की संक्लेष भाव से मिली पर्याय को भी देखकर दुःखी होगा। वही आत्मा पहले से कष्ट प्राप्त क्षुद्र प्राणियों का घात करने से बचेगा। हमारे कृत्यों से किसी जीव का घात न हो, हमारी चेष्टाओं से किसी के प्राणों का घात न हो, इस भाव से जीव दया करना जीवनदान देना है। जीवनदान देना ही परमधर्म है।

नारायण श्री कृष्ण युधिष्ठिर को उपदेश देते हैं कि -

एकतः काञ्चनो मरुः कृत्सनः चैव वसुन्धरा।
एकस्य जीवितं दद्यात् न त तुल्यं युधिष्ठिर॥

अर्थात् एक तरफ मेरु के बराबर स्वर्ण दान देना और दूसरी ओर सम्पूर्ण वसुन्धरा का दान करना, उससे भी कही अधिक हे युधिष्ठिर! एक जीव को जीवन दान देने का फल है।

**कस्य वशे प्राणिगणः सत्यप्रियभाषिणो विनीतस्य।**
**क्व स्थातव्यं न्याय्ये पथि दृष्टादृष्टलाभाय॥ 23॥**

---

**किसके वश में जनता रहती, राज ऋषी यह बतलाओ।**
**सत्य और प्रिय भाषी बनके, सदा नम्रता मन लाओ॥**
**धन यश प्राप्ति करने अथवा पर भव पुण्य प्राप्ति करने।**
**न्याय मार्ग पर ही तुम चलना, भले कष्ट हो यदि सहने॥ 23॥**

**अन्वयार्थ :** ( **प्राणिगणः** ) प्राणी ( **कस्य** ) किसके ( **वशे** ) वश में होते हैं। ( **सत्य-प्रिय-भाषिणः** ) सत्य और प्रिय बोलने वाले के तथा ( **विनीतस्य** ) विनीत पुरुष के। ( **दृष्टादृष्टलाभाय** ) दृष्ट-अदृष्ट लाभ के लिए ( **क्व** ) कहाँ ( **स्थातव्यम्** ) रहना चाहिए? ( **न्याय्ये पथि** ) न्याय पथ में।

**टीका :** प्राणिगणः जीवानां समूहः। कस्य जनस्य वशे अधीनतां यान्ति? सत्यप्रियभाषिणः सत्यं च प्रियं च भाषी यः तस्य। विनीतस्य विनम्रभूतस्य च। क्व स्थातव्यम्? न्याये पथि न्यायात् मार्गात् लोभेन न चलितव्यम्। किमर्थम्? दृष्टादृष्टलाभाय तत्र सम्मान-धनप्राप्तिसन्तोष भावादिः दृष्टलाभः। स्वर्गपुण्या-वाप्तिश्च अदृष्टलाभः। द्विविधलाभायेति।

**विवेचन :** प्रिय बोलना तो आसान है, पर सत्य के साथ प्रिय बोलना कठिन है। प्रिय बोलकर कुछ लोग दूसरों को ठग सकते हैं। इसलिए यहाँ चेतावनी दी है कि सत्य के साथ प्रिय बोलो। जो सत्य प्राणियों को विपत्ति में डाल दे, वह भी असत्य है। सत्य भी विनीत होकर प्रिय वचनों से बोलें। यदि कोई सत्य और प्रिय भी बोलता है लेकिन उद्दण्ड है, अविनीत है तो लोग उसके वश में नहीं होते हैं, उसकी बात स्वीकारते नहीं हैं। सत्य बोलने से विश्वास उत्पन्न होता है। प्रिय बोलने से प्रेम मिलता है और नम्र रहने से सम्मान मिलता है। इन तीन गुणों से तीन लोक वश में हो जाते हैं।

आज लोग सत्य बोलने का दम्भ तो रखते हैं पर विनीत होकर, प्रिय वाक्यों से नहीं बोलते इसलिए ऐसे लोग सही होकर भी दूसरों के घृणा पात्र हो जाते हैं और जीवन भर परेशान रहते हैं। कुछ लोग दूसरे की छोटी-छोटी कमियों को गलत समझकर अन्य लोगों से कहते हैं, जिस कारण से वह स्वयं बुरे बन जाते हैं। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि जिसकी कमी है उसी से कहो, अन्य से कहने पर बुराई ही होती है। वह



सत्य होकर भी असत्य की कोटि में चला जाता है।

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

अर्थात् सत्य बोलो, प्रिय बोलो किन्तु ऐसा सत्य मत बोलो जो अप्रिय हो और ऐसा झूठ मत बोलो जो प्रिय लगे। यही सनातन धर्म है।

हे आत्मन्! जो देखने में आता है, वह भी सत्य नहीं है, जो सुनने में आता है, वह भी सत्य नहीं, जितना कहने में आता है, उतना भी सत्य नहीं। सत्य कहने, सुनने, देखने की चीज नहीं अनुभव की चीज है। इसलिए मैं सत्य बोलता हूँ, ऐसा मिथ्या दम्भ भी मत करो।

जो लाभ प्रत्यक्ष दिखाई दे, वह दृष्ट है और जो अगले में या बाद में मिलता है, वह अदृष्ट है। ये दोनों ही लाभ न्याय मार्ग पर चलने से ही मिलते हैं। न्याय मार्ग का उल्लंघन करने पर जब यहाँ प्रत्यक्ष में दण्ड मिलता है और नीचा देखना पड़ता है तो पर भव में सुख कहाँ? इसलिए न्याय से धन कमाओ और न्याय से ही गँवाओ।

कुछ लोग अन्याय से धन कमाकर धर्म मे गँवाते हैं और धार्मिक होने का दम्भ भी रखते हैं, वे लोग धर्म से कोशों दूर हैं। झूठ बोलकर, अन्याय से पैसा लेकर सम्मेदशिखर की यात्रा करने से कौन-सा धर्म होगा? किसी असहाय की मजबूरी का फायदा उठाकर धन-सम्पत्ति ग्रहण कर उसका दान करने से कौन-सा धर्म होगा? पद के मद में दूसरों का दम लेने से कौन-सा धर्म होगा? अन्याय करके दूसरों को न्याय दिलाने से कौन-सा धर्म होगा?

भले ही हमें इन कृत्यों से प्रत्यक्ष लाभ कुछ मिल जाय किन्तु बाद में पछताना ही हाथ लगेगा। इसलिए न्याय-नीति के अनुसार चलो, यही धर्म है, यही वास्तविक सुख है।

अन्याय के मार्ग से कैकेयी ने कितना सुख भोग लिया? अन्याय

के मार्ग से कौरवों ने क्या हासिल कर लिया? अन्याय से रावण ने कौन-सा बड़प्पन हासिल किया?

मान-सम्मान, यश, ख्याति, धन आदि का लाभ दृष्ट लाभ है और परभव में उच्चकुल, धनाढ्य, कीर्ति आदि पुण्य का अर्जन होना अदृष्ट लाभ है।

**विद्युत्विलसितचपलं किं दुर्जनं संगतं युवतयश्च।**
**कुलशैलनिष्प्रकम्पाः के कलिकालेऽपि सत्पुरुषः ॥ 24 ॥**

**अन्वयार्थ : ( विद्युत् विलसितचपलम् किम् )** बिजली के समान चंचल क्या है? **( दुर्जनम् संगतम् )** दुर्जन के साथ मैत्री **( च )** तथा **( युवतयः )** स्त्रियाँ हैं। **( कलिकाले अपि )** कलिकाल में भी **( कुलशैल-निष्प्रकम्पाः के )** कुलाचल पर्वत के समान निश्चल कौन है? **( सत्पुरुषः )** सज्जन पुरुष हैं।

**टीका** : विद्युद्विलसितचपलं किम्-विद्युत् विलासवत् अस्थिरः किम्? दुर्जनसंगतं दुष्टपुरुषाणां संगतिः। च तथा। युवत्यः स्त्रीणां हासविलासः। कलिकालेऽपि पञ्चमेकालेऽपि कुलशैलनिष्प्रकम्पाः कुलाचलपर्वतसदृशनिश्चलाः के सन्ति? सत्पुरुषाः सज्जनाः परैः पीड्यमानाः अपि स्वस्वभावगतसरलतां न त्यजन्ति ते सज्जना एव कुलपर्वतवद् धीरा भवन्ति।

**विवेचन** : दुर्जन के साथ मित्रता बिजली की चमक की तरह थोड़ी देर ही रहती है। दुर्जन समय पर अपने को सहारा न देकर उल्टा

**बिजली चमक तरह क्या चंचल, जो क्षण भर रह विनश चले।**
**दुर्जन जन की संगति करना, नारी हास-विलास छले॥**
**इस कलियुग में भी निश्चल जो गिरि सुमेरु सम अडिग रहा।**
**सज्जन पुरुष बना यदि सज्जन कलियुग में भी विस्मय हा॥ 24 ॥**





डुबा देता है। ''मुँह में राम बगल में छुरी'' यह दुर्जन का स्वभाव होता है, वह मीठी-मीठी बातों में इतना लुभा देता कि लगता है उसके समान हितैषी दुनिया में कोई नहीं है। दुर्जन का व्यवहार वेश्या की तरह होता है। वेश्या को जब तक अपना स्वार्थ सधता है तभी तक पुरुष के सामने प्रेम का नाटक करती है। स्वार्थ गया प्रेम गया। कलिंगसेना वेश्या ने चारुदत्त से जुए में उसका धन जीत लिया और पुत्री से मोह उत्पन्न करवाकर उसका धन हड़पने लगी। धीरे-धीरे चारुदत्त के पिता के सोलह करोड़ दीनारें उस वेश्या के घर आ गयीं। चारुदत्त का धन समाप्त हुआ जानकर उसने उसे वैसे ही छोड़ दिया जैसे कोई गन्ने को चूसकर छिलका फेक देता है। चारुदत्त को जब होश आया तब तक बहुत देर हो चुकी थी। रूप और धन पर मोहित हुई स्त्रियाँ बिजली की तरह चंचल होती हैं उनकी चमक में जो मोहित हो जाते हैं, वह अपना सर्वस्व लुटा देते हैं।

आज के युवक और युवती इस बिजली की चमक में कीट-पतंगों की तरह गिर पड़ते हैं, जलते हैं और मर जाते हैं। इस तड़फन को और मरण को सुख मानते हैं। कलिकाल का यह विलास घर, स्कूल, कॉलेज, खेल, नौकरी और व्यापार में गहराइयों में पैठ करता जा रहा है। इस कलिकाल में यदि कहीं कोई सज्जन पुरुष दिख जाये तो समझना उसका हृदय कुलाचल पर्वत की तरह अकम्प है। वासना की अन्धाधुन्ध हवाओं में जो सहृदय सज्जनता का निर्वाह कर रहा है, वह मेरु तुल्यमना स्तुत्य है, प्रणम्य है।

सज्जन अर्थात् सत्-शोभन मनुष्य। वह मनुष्य धन्य है, जिसे पर स्त्री की चाह नहीं और पर स्त्री को देखकर जो धरती पर दृष्टि डालता है, वही सज्जन पुरुष है। पं. भूधरदासजी ने युवती को अग्नि की उपमा देकर सज्जनता का क्या अच्छा चित्रण किया है -

दिव दीपक लोय बनी वनिता जड़ जीव पतंग जहाँ पड़ते।

दुख पावत प्राण गंवावत हैं वरजै न रहैं हठ सों जरते॥
इस भांति विचक्षण अक्षन के वश होय अनीति नहीं करते।
परती लखि जे धरती निरखें धनि हैं, धनि हैं, धनि हैं जन ते॥

अर्थात् परनारी एक ऐसी जलती हुई दीपक की लौ है, जिस पर मूर्ख प्राणी रूप पतंगे गिरते हैं, दुःख पाते हैं और जलकर प्राण गँवा देते हैं। रोकने और समझाने पर भी नहीं मानते, हठ पूर्वक जलते ही हैं। विवेकी पुरुष इन्द्रियों के वश होकर ऐसा अनुचित कार्य नहीं करते। अहो! जो व्यक्ति परनारी को देखकर अपनी नजर धरती की ओर नीची कर लेते हैं, वे धन्य हैं! धन्य हैं! धन्य हैं!

**किं शौच्यं कार्पण्यं सति विभवे किं प्रशस्यमौदार्यम्।**
**तनुतरवित्तस्य तथा प्रभविष्णोर्यत्सहिष्णुत्वम्॥ 25॥**

**अन्वयार्थ** : ( **किं शौच्यम्** ) शोचनीय क्या है? ( **कार्पण्यम्** ) कृपणता ( **सति विभवे किं प्रशस्यम्** ) वैभव होने पर भी क्या प्रशंसनीय हैं ( **औदार्यम्** ) उदारता ( **तनुतर वित्तस्य** ) निर्धन को भी क्या प्रशंसनीय है। ( **तथा** ) वही उदारता ( **प्रभविष्णोः** ) समर्थ पुरुष को क्या प्रशंसनीय है। ( **यत् सहिष्णुत्वम्** ) जो सहनशीलता है।

**टीका** : किं शोच्यं शोकस्य योग्यम्? कार्पण्यम् कृपणता। 'विभवे सति' इति पदमुभयत्र योज्यम्। धनवैभवसम्पन्नेऽपि न स्वयं तस्योपभोगो न चान्यस्य प्रदानं नाम कार्पण्यम्। सति विभवे किं प्रशस्यं प्रशंसा-योग्यम्? औदार्यमुदारता। मुक्तहस्तेन धनप्रदानमौदार्यम्। तथा तनुतर-

---

**बुधजन किस पर खेद किए हैं, धन युत हो कंजूस बना।**
**जो धन हीन हुआ उसको भी क्या प्रशंस के योग्य घना॥**
**निर्धन भी यदि उदार होता, बहुत प्रशंसा पाता है।**
**जो बलवन्त हुए उनमें भी सहनशीलपन भाता है॥ 25॥**





वित्तस्य धनविहीनस्य किं प्रशस्यम्? तथा औदार्यम्। प्रभूतधनरहितोऽपि यः स्वसामर्थ्येन धनं वितरति तस्य हृदयस्य औदार्यं प्रशंसनीयम्। प्रभविष्णोः बलवतः पुरुषस्य किं प्रशस्यं कार्यम्? सहिष्णुत्वम् सहनशीलता क्षमा।

**विवेचन** : धन होने पर भी जो दान नहीं देते, कृपण बने रहते हैं, यह बड़ा खेद का विषय है। पूर्व पुण्य के उदय से धन-वैभव की प्राप्ति होती है। धन होने पर भी कंजूस बने रहना, व्यक्ति की अत्यन्त लोभवृत्ति का सूचक है। ऐसा व्यक्ति न तो स्वयं धन का उपभोग कर पाता है और न किसी को उपयोग करने देता है। अत्यधिक लोभी ऐसे जीवों का धन चोर, डकैत या सरकारी अफसरों के हाथ ही लगता है। कंजूसी के कारण वह लोभी व्यक्ति इस जन्म में तो अपयश का पात्र बनता ही है किन्तु पर जन्म में भी सर्प आदि योनि को प्राप्त करता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि वैभव होना बड़ी बात नहीं है किन्तु वैभव के साथ उदारता होना प्रशंसनीय है। उदारता अर्थात् विशाल हृदय, दानशीलता। इस उदारता के कारण वह व्यक्ति भी प्रशंसा का पात्र बन जाता है, जिसके पास धन थोड़ा है।

देखो! धन तो बहुतों के पास होता है। अन्याय और छल से धन कमाने वालों का अंजाम बुरा ही होता है। बड़े-बड़े नेता-अफसरों के पास से जब यह धन पकड़ा जाता है तो वह अपमानित होते हैं और न्याय से धन कमाने वाले भी चिन्तातुर रहते हैं। महाराणा प्रताप जब अकबर की सेना से मुकाबला नहीं कर पाये और सेना के निर्वाह के लिए धन न होने के कारण जब राजस्थान से बाहर जाने लगे तो भामाशाह ने राणा के यहाँ अशर्फियों का इतना ढेर लगा दिया कि उससे 25,000 सैनिकों का 12 वर्ष तक का खर्च चल जाता। इस धन से राणा ने पुनः सैन्य बल इकट्ठा कर मातृभूमि का उद्धार किया। जैन कुल में जन्मे उस भामाशाह का नाम आज भी गौरव से लिया जाता है। महाराणा प्रताप को इतनी सहनशीलता थी

कि उसने घास की रोटी खाकर दिन गुजारे किन्तु मुगलों की दासता स्वीकार नहीं की।

**चिन्तामणिरिव दुर्लभ-मिह ननुकथयामि चतुर्भद्रम्।**
**किं तद्वदन्ति भूयो विधूत तमसो विशेषेण॥ 26॥**
**दानं प्रियवाक्यसहितं ज्ञानमगर्वं क्षमान्वितं शौयम्।**
**त्याग सहितं च वित्तं दुर्लभमेतच्चतुर्भद्रम्॥ 27॥**

**अन्वयार्थ :** **( चिन्तामणिः इव दुर्लभम् )** चिन्तामणि रत्न के समान दुर्लभ **( इह )** इस संसार में **( किम् )** क्या है? **( ननु )** निश्चय से **( चतुर्भद्रम् )** चार भद्र चीजें हैं। **( विधूततमसः )** अज्ञान अंधकार से रहित जन **( विशेषण )** विशेष रूप से **( तद् वदन्ति )** उसी का कथन **( भूयः )** खूब करते हैं **( कथयामि )** उसी को मैं कहता हूँ। **( प्रियवाक्यसहितम् )** प्रिय वचनों के साथ **( दानम् )** दान, **( अगर्वं )** गर्व रहित **( ज्ञानम् )** ज्ञान, **( क्षमान्वितम् )** क्षमा सहित **( शौर्यम् )** शौर्य **( च )** और **( त्याग सहितम् )** त्याग के साथ **( वितम् )** धन **( एतत् )** यह **( चतुर्भद्रम् )** चार कल्याणप्रद चीजें **( दुर्लभम् )** दुर्लभ हैं।

**टीका :** चिन्तामणिः इव दुर्लभं इह अस्मिन् लोके किम्? तत् चतुर्भद्रं कल्याणप्रदं चतुष्कं कथयामि। नूनं निश्चयेन। भूयो वदन्ति आधिक्येन निरूपयन्ति। के वदन्ति? विधूततमसः विधूतं विगलितं तमोऽज्ञानान्धकारो यैस्ते गणधरादयः। कथम्? विशेषेण। दानं त्यागः। कथंभूतम्? प्रियवाक्य सहितम् स्वकीय धनस्य दानेन सह अपि मधुर-वचनप्रदानं यथा अहं धन्योऽस्मि यत् मम दानं भवता गृहीतम्। इति प्रथमभद्रम्। ज्ञानं क्षयोपशम

---

**मोह तिमिर अपहरण किया है, वे ज्ञानी जो कहते हैं।**
**चतुर्भद्र चिन्तामणि दुर्लभ उनको ही हम कहते हैं॥**
**दान करो प्रिय वचन बोलकर ज्ञान गर्व बिन धारण हो।**
**क्षमा शौर्य संग धनिक त्याग संग चार भद्र शिवकारण हों॥**





प्रकर्षोत्पन्न शास्त्रानुशीलनम्। कथंभूतम्? अगर्वं अहंकाररहितम्। द्वितीयभद्रम्। शौर्यं पराक्रमः। कथंभूतम्? क्षमान्वितं क्षमासहितम्। इति तृतीयभद्रम्। च वित्तं धनम्। त्यागसहितं दानपूर्वकम्। इति चतुर्थभद्रम्। एतत् उपर्युक्तं चतुर्भद्रं दुर्लभम् विरलेषु दृश्चते इति भावः।

**विवेचन :** दान देने के साथ वचनों की मधुरता आवश्यक है। प्रिय मधुर वचनों से ही मन की प्रसन्नता समझ में आती है। दान देने वाला यदि खुश होकर दान देता है तो लेने वाले को भी आनन्द आता है और उसे दान बोझ नहीं लगता है। वस्तुतः देने वाले को इस बात की खुशी होनी चाहिए कि चलो अच्छा अवसर आया, जो आज मेरा बोझ मेरे मन का भार हल्का हो गया। भार हल्का होने में तो आनन्द आता ही है। यदि बेमन से दान दिया जाता है तो उससे लेने वाले को भी प्रसन्नता नहीं होती और वह उस दान को भार महसूस करता है। भिखारी भी अनादर से नहीं लेता और बच्चा भी माँ का दूध नहीं पीता, यदि माँ क्रोध में होती है। हम भिखारी को भी कुछ दें तो भी उसे ऐसा न लगे कि हमारे ऊपर एहसान किया जा रहा है, बल्कि उस समय हम सोचें कि हमें किसी का दुःख दर्द दूर करने का एक अवसर हमें मिला है। वह भिखारी भी हमें सीख देता है कि पूर्व जन्म में हमने बहुत कमाया था लेकिन दान नहीं किया इसलिए मैं दरिद्री बना हूँ आप अपने लिए आगे का रास्ता धनी बनने का प्रशस्त कर लो। परन्तु सावधान! आज के भिखारियों से सावधानी बरतना।

एक बार की बात है कि एक राजा बहुत दान देने के कारण अपने राज्य में प्रसिद्धि पा चुका था। एक बार एक साधु उस राज्य में पहुँचे। राजा ने राजमहल के द्वार पर कर्मचारी नियुक्त कर रखे थे कि कोई भी इस द्वार से खाली हाथ न जाए। साधु द्वार पर पहुँचे तो कर्मचारियों को दान देते देख कर उन्होंने कहा कि – मैं आपके हाथ से दान नहीं लूँगा राजा यदि दान देगा तो लूँगा, अन्यथा चला जाऊँगा।

राजा से साधु को मिलवाया गया। राजा ने संत को प्रणाम कर

कहा – 'आप आज्ञा दें।' साधु ने कहा – क्या आप मेरे लिए दान दे सकते हैं? राजा ने हाथ जोड़कर कहा – अगर मेरे लिए संभव हुआ तो अवश्य दूँगा। साधु ने कहा – मुझे बस इतना धन चाहिए कि मैं स्वर्ग जा सकूँ। राजा ने कहा–मैं आपका आशय समझा नहीं। साधु ने समझाया – राजन्! केवल दान देने से कोई सुखी नहीं हो जाता है। भिक्षा माँगने वाले भीख की आदत से आलसी हो जाते हैं और व्यसनों में लिप्त हो जाते हैं। इसलिए आप जो धन दान करते हैं, उससे कुछ रोजगार देकर उनको परिश्रम करना सिखाएँ और उन्हें स्वाभिमान में जीना सिखाएँ, यही सच्चा दान हमारे लिए होगा। राजा को अपनी गलती का एहसास हुआ और उसने साधु की बात का पूर्ण अनुपालन किया।

ज्ञान की शोभा विनम्रता से है। गर्व से ज्ञान का महत्त्व कम हो जाता है। देखो! गुणों की शोभा गुण से ही है, यदि एक गुण को धारण किया है तो दूसरे गुण भी अपने आप आकर्षित होकर चले आते हैं। ज्ञान प्राप्त होना तो दुर्लभ है ही किन्तु घमण्ड नहीं होना, उससे भी दुर्लभ है। ये दोनों गुण एक साथ मिलते हैं तो ज्ञान की महत्ता बढ़ती है और ज्ञानी को भी आदर मिलता है।

शौर्य अर्थात् पराक्रम होते हुए भी क्षमा भाव होना महानता है। महान् राजा के पास यह गुण होता है। यह महानता का गुण राम के पास भी था और रावण के पास भी। रावण ने सहस्ररश्मि राजा को बंदी बना लिया। पिता मुनिराज थे। उन्होंने रावण से सहस्ररश्मि को छोड़ने को कहा। रावण ने तुरन्त उसे छोड़ दिया और सहस्ररश्मि ने वैराग्य धारण कर लिया।

धन हो और त्याग की भावना न हो तो वह धन की शोभा नहीं है। धन की शोभा त्याग से है। धन की तीन गति होती हैं – दान, भोग और नाश। दान धन की उत्तम गति है। भोग लेना मध्यम है। यदि दान और भोग नहीं हुआ तो उस धन का नाश निश्चित है।



**इति कण्ठगता विमला प्रश्नोत्तर रत्नमालिका येषाम्।**
**ते मुक्ताभरणा अपि विभान्ति विद्वत्समाजेषु॥ 28॥**
**विवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेयं रत्नमालिका।**
**रचितोऽमोघवर्षेण सुधियां सदलंकृतिः॥ 29॥**

**अन्वयार्थ :** **( इति )** इस प्रकार **( येषाम् )** जिन व्यक्तियों को **( विमला )** यह निर्मल **( प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका )** प्रश्नोत्तर रत्नमाला **( कण्ठगता )** कण्ठगत हो जाती है **( ते )** वे लोग **( मुक्ताभरणाः अपि )** आभरण से रहित होते हुए भी **( विद्वत्समाजेषु )** विद्वानों की सभा में **( विभान्ति )** सुशोभित होते हैं। **( विवेकात् )** विवेक से **( त्यक्त राज्येन )** जिन्होंने राज्य छोड़ दिया है **( राज्ञा )** उस राजा **( अमोघवर्षेण )** अमोघवर्ष के द्वारा **( सुधियाम् )** बुद्धिमानों के लिए **( सत् अलंकृतिः )** उत्तम आभूषण रूप **( इयम् )** यह कृति **( रचिता )** रची है।

**टीका :** इति एवं प्रकारेण। येषां पुरुषाणाम्। प्रश्नोत्तररत्नमालिका। कथंभूता? विमला निर्मला। कण्ठगता स्मृता। ते मुक्ताभरण आभूषणरहिता अपि विद्वत्समाजेषु विदुषां मध्ये विभान्ति सुशोभन्ते।

सुधियां विदुषां। सदलङ्कृतिः उत्तमहारः। इयं रत्नमालिका रचिता। केन? अमोघवर्षेण राज्ञा। किं विशिष्टेन? विवेकात् त्यक्तराज्येन भेदविज्ञानं बलात् बुद्धिपूर्वकं त्यक्तं राज्यं साम्राज्यं तेन दिगम्बरमुनिनेत्यर्थः।

**विवेचन :** इन श्लोकों से स्पष्ट है कि राजा अमोघवर्ष ने अपने विवेक ज्ञान से राज्यभार छोड़कर दीक्षा ग्रहण की और सत्पुरुषों के लिए यह कृति बनाई थी।

---

**प्रश्नोत्तर रत्नों की माला, जिनके कण्ठों का आभूषण।**
**तन आभरण रहित हों फिर भी बुधजन सभा मध्य भूषण॥**
**धर विवेक तज राज्य राज ऋषि बन अमोघवर्ष मुनिराज।**
**सुधीजनों का आभूषण कृति रची गयी निज-पर हित काज॥**